भाषा-काव्य-सुधा

(१३ प्राचीन कवियों की चुनी हुई कवितायें)

सम्पादक

मूलराज जैन एम० ए०, एलएल० बी०

भूतपूर्व प्रिन्सिपल, जैन कालिज, अम्बाला सिटी

प्रकाशक

देवीदास जानकीदास, एजूकेशनल पब्लिशर्स

लाहौर, अमृतसर ।

पांचवीं बार २०००] [मूल्य १)॥

श्रीकृष्ण दीक्षित के प्रबन्ध से बाम्बे मैशीन प्रेस, मोहनलाल रोड लाहौर ने ला० त्रिलोकचन्द जी के लिये छापा ।

विषय-सूची

अपनी ओर से

भातीय संस्कृति की गोद में खेलते हुए हिंदी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसका नाम था 'चंद'। चंद हिंदी का पहिला महाकवि माना जाता है। 'चंद' पृथ्वीराज के सम-कालीन था और पृथ्वीराज स्वतंत्र भारत के अन्तिम सम्राट् थे। सं० १२४८ के लग भग में दिल्ली का राजसिंहासन मुसलमानों के हाथों में चला गया।

बस यही काल था जिसमें हमारी हिंदी अपने शैशव की क्रीड़ा कर रही थी। यों तो इतिहासकारों ने उसका जन्म काल सं० १०५० ठहराया है, परन्तु इसका भाव यह नहीं कि वह तुरन्त ही इतनी शक्ति-सम्पन्न होगई कि उसमें अच्छी तरह साहित्य का निर्माण होने लग पड़ा हो। उसे उठने लायक शक्ति संचय करने के लिये लग भग २०० वर्ष लगाने पड़े।

भारतीय परिस्थितियों का तात्कालिक इतिहास देखने से पता चलेगा कि उसकी सारी शक्तियां छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं। भारतीय राजपूतों के खंडराज्य एक २ कर के कभी भी जीते जा सकते थे। संगठन-शक्ति का ह्रास हो चुका था, सब को अपनी २ पड़ी थी, इसी काल में धार्मिक जोश में भरे यवनों ने भारत की लूट के लालच में आकर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। भारत पददलित होने लगा, परन्तु शान में ऐंठे रहने वाले राजपूतों ने संगठित-शक्ति-द्वारा आक्रां-ताओं से अपनी कोई भी रक्षा नहीं की। स्वार्थपरता के कारण सबको अपनी २ ही पड़ी थी। प्रशंसा के लालची सब अपनी डेढ़ २ चावल की खिचड़ी पका रहे थे। हमारी हिंदी भी उस समय उन्हीं राज-दर्बारों में पड़ी २ बालघुट्टियां पी

रही थी। राज्याश्रित चारण-भाट ही कभी २ राजप्र-शंसा में उसका उपयोग करते थे! चारण लोग अपने आश्रयदाताओं की प्रसन्नता के लिये उनकी मन चाही कविता करते थे। आश्रयदाता महाराज का बल-पौरुष, संपत्ति-ऐश्वर्य, उदारता, दयाशीलता, रंग, रूप तथा उसकी सेना, सवारी, शिकार आदि का वर्णन ही उसके यहां होता था और वह कहीं २ अत्युक्ति के कारण असत्य तक भी हो जाता था।

कवियों की इन कविताओं का उद्देश्य जहां अपने आश्रय-दाताओं को रिझाना था वहां साथ ही आश्रयदाताओं को उत्ते-जित करके शत्रुओं के सम्मुख बल संपादन करने के लिये उत्साहित करना भी था। इसी के फलस्वरूप उस काल में खुम्माणरासो, बीसलदेवरासो तथा पृथ्वीराजरासो जैसे वीर-काव्य रचे गये। चन्द इसी प्रसिद्ध पृथ्वीराजरासो का रचयिता।

इस काल के ग्रन्थ इन वीरगाथाओं के रूप में ही क्यों मिलते हैं? इसका कारण हम पहिले बता चुके हैं कि यह समय भारतीय इतिहास के अन्दर संघर्ष का काल था। लड़ाई झगड़ों के अवसरों पर मनुष्य केवल अपने बल-वीर्य की शक्तियों का ही सहारा ताकता है। मानव-समाज की चर्चाओं का विषय भी यही वीरता की कहानियां बन जाती हैं।

हिंदी-साहित्य के इतिहास में इन्हीं वीरगाथाओं की परंपरा संवत १३७५ वि० तक रही, साहित्य के इतिहास में यह काल वीर-गाथा-काल के नाम से प्रसिद्ध है।

वीर गाथा-काल की समाप्ति तक तुगलक वंश भी अपनी आयु के दिन गिन गिन कर पूरे कर चुका था। अभिप्राय

यह कि तीर-तलवार चलाते २ भी हमारी गुलामी की बेड़ियां मज़बूत होती चली जा रही थीं अथवा यों कहना चाहिये कि पराधीनता हमें जकड़ रही थी और हम फिर भी अपनी वीर वाणियां —— नहीं २, गर्वोक्तियां सुनाये चले जा रहे थे। गुलाम, खिलजी तथा तुगलक वंश क्रम से बनते और बिगड़ते गये, परन्तु हम अभी तक यह न समझ सके कि इन गर्वोक्तियों का हमें अब कोई अधिकार नहीं है।

तुगलक वंश विनाश के अन्तिम दिनों में था तब कहीं भारतीय जनता ने अपने आपको पूर्णरूपेण विवश अनुभव किया। निर्बल, निराश्रित जनता का विश्वास तोप, तीर, तलवारों से उठ चुका था. अब निर्बल का बल केवल राम थे। दुखी आत्मा ने भगवान की शरण ली, इसलिये हमारे साहित्य में वीरों का स्थान भक्तों ने और तीर-तलवारों का स्थान जप, तप, पूजा, पाठ और भक्ति ने ले लिया। यही भक्ति-साहित्य की परंपरा हमारे इतिहास में सं० १७०० तक चली।

वीरगाथा काल में हिंदी में अभी वह बल नहीं आ पाया था जिस बल के आधार पर भाषाएं साहित्यिक कहलाया करती हैं। भाषा के इतिहास की दृष्टि से उस काल के अनेक रूप किये जा सकते हैं। इन सवा तीन सौ वर्षों में हिंदी ने कितने ही रूप बदले। इस भक्त-काल में प्रवेश करती हुई हिंदी भाषा ने अब अपना रूप बहुत कुछ स्थिर कर लिया था। अब वह उधारे लिये शब्दों का संग्रहमात्र न दिखाई देता था— उसमें मौलिकता आ चुकी थी उसमें अपनत्व आ चुका था। अब उसमें वह बल आ चुका था जो किन्हीं सम्पन्न

रही थी। राज्याश्रित चारण-भाट ही कभी २ राजप्र-शंसा में उसका उपयोग करते थे! चारण लोग अपने आश्रयदाताओं की प्रसन्नता के लिये उनकी मन चाही कविता करते थे। आश्रयदाता महाराज का बल-पौरुष, संपत्ति-ऐश्वर्य, उदारता, दयाशीलता, रंग, रूप तथा उसकी सेना, सवारी, शिकार आदि का वर्णन ही उसके यहां होता था और वह कहीं २ अत्युक्ति के कारण असत्य तक भी हो जाता था।

कवियों की इन कविताओं का उद्देश्य जहां अपने आश्रय-दाताओं को रिझाना था वहां साथ ही आश्रयदाताओं को उत्ते-जित करके शत्रुओं के सम्मुख बल संपादन करने के लिये उत्साहित करना भी था। इसी के फलस्वरूप उस काल में खुम्माणरासो, बीसलदेवरासो तथा पृथ्वीराजरासो जैसे वीर-काव्य रचे गये। चन्द इसी प्रसिद्ध पृथ्वीराजरासो का रचयिता।

इस काल के ग्रन्थ इन वीरगाथाओं के रूप में ही क्यों मिलते हैं? इसका कारण हम पहिले बता चुके हैं कि यह समय भारतीय इतिहास के अन्दर संघर्ष का काल था। लड़ाई झगड़ों के अवसरों पर मनुष्य केवल अपने बल-वीर्य की शक्तियों का ही सहारा ताकता है। मानव-समाज की चर्चाओं का विषय भी यही वीरता की कहानियां बन जाती हैं।

हिंदी-साहित्य के इतिहास में इन्हीं वीरगाथाओं की परंपरा संवत १३७५ वि० तक रही, साहित्य के इतिहास में यह काल वीर-गाथा-काल के नाम से प्रसिद्ध है।

वीर गाथा-काल की समाप्ति तक तुगलक वंश भी अपनी आयु के दिन गिन गिन कर पूरे कर चुका था। अभिप्राय

यह कि तीर-तलवार चलाते २ भी हमारी गुलामी की बेड़ियां मज़बूत होती चली जा रही थीं अथवा यों कहना चाहिये कि पराधीनता हमें जकड़ रही थी और हम फिर भी अपनी वीर गाथियां — नहीं २, गर्वोक्तियां सुनाये चले जा रहे थे। गुलाम, खिलजी तथा तुगलक वंश क्रम से बनते और बिगड़ते गये, परन्तु हम अभी तक यह न समझ सके कि इन गर्वोक्तियों का हमें अब कोई अधिकार नहीं है।

तुगलक वंश विनाश के अन्तिम दिनों में था तब कहीं भारतीय जनता ने अपने आपको पूर्णरूपेण विवश अनुभव किया। निर्बल, निराश्रित जनता का विश्वास तोप, तीर, तलवारों से उठ चुका था. अब निर्बल का बल केवल राम थे। दुखी आत्मा ने भगवान की शरण ली, इसलिये हमारे साहित्य में वीरों का स्थान भक्तों ने और तीर-तलवारों का स्थान जप, तप, पूजा, पाठ और भक्ति ने ले लिया। यही भक्ति-साहित्य की परंपरा हमारे इतिहास में सं० १७०० तक चली।

वीरगाथा काल में हिंदी में अभी वह बल नहीं आ पाया था जिस बल के आधार पर भाषाएं साहित्यिक कहलाया करती हैं। भाषा के इतिहास की दृष्टि से उस काल के अनेक रूप किये जा सकते हैं। इन सवा तीन सौ वर्षों में हिंदी ने कितने ही रूप बदले। इस भक्त-काल में प्रवेश करती हुई हिंदी भाषा ने अब अपना रूप बहुत कुछ स्थिर कर लिया था। अब वह उधारे लिये शब्दों का संग्रहमात्र न दिखाई देता था– उसमें मौलिकता आ चुकी थी उसमें अपनत्व आ चुका था। अब उसमें वह बल आ चुका था जो किन्हीं सम्पन्न

भाषाओं में हुआ करता है। प्रमाण रूप हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य-चंद्र इसी भक्तिकाल की देन हैं। रामचरितमानस और सूर-सागर जैसे अमर ग्रन्थों की रचना इसी काल में तो हुई। भक्ति-साहित्य हमारे हिंदी साहित्य की अमर तथा अमूल्य निधि है।

इस भक्ति-काल में भक्तिमार्गी शाखा की चार शाखाएं हो गई। ज्ञानाश्रयीशाखा, प्रेममार्गी शाखा, कृष्ण भक्ति शाखा, राम भक्ति शाखा। कबीर, जायसी, सूर, और तुलसी क्रमानुसार प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इस भक्ति-काल मे जितना अमर-साहित्य तैयार हुआ उतना किसी भी अन्य काल में नहीं बना, यह बात साहसपूर्वक कही जा सकती है।

भक्तों ने अपनी पूजा अर्चना से रूठे भगवान को बहुतेरा मनाया, परन्तु पराधीनता की जंजीर ढीली जरा भी न हो सकी। धीरे धीरे भक्ति में कर्मकांडों का स्थान शृङ्गार ने ले लिया। कवियों की वही ईश्वरोन्मुख प्रतिभा विलासिता के उपवन में नये २ फूल खिलाने लगी। फल यह हुआ, भक्तों की गद्दी पर रसिकों ने छापा मारा और इस के परिणाम-स्वरूप भक्ति के पश्चात् रीति ग्रन्थों की रचना आरम्भ हुई। रीति विषयक तथा नायक नायिका-भेद संबन्धी ग्रन्थों का निर्माण बड़े धड़ल्ले से हुआ। भक्ति का स्थान विलासिता ने इस प्रकार अचानक क्यों छीन लिया? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसकी वजह थी यह कि भक्तिवाद की शुष्कता ने उन्हें कोई भी फल नहीं दिया, उल्टे उनके कष्ट बढ़ते ही गए। इसके अतिरिक्त यवनकालीन विलासिता से भी हमारा क[illegible] [illegible]ज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। यवनों की

विलासिता ने हमारे कवियों पर अपनी पूरी छाप डाली। मुगल दर्बार में जाने वाले केशव, रहीम और भूषण इन्हीं रीतिकाल के कवियों में से थे। नीति-ग्रन्थों तथा नायक भेद सम्बन्धी ग्रन्थों में शृङ्गार सर्वत्र आया दीख पड़ेगा परन्तु केवल एक अपवादस्वरूप भूषण इस दायरे से बाहिर किया जा सकता है। भूषण ही एक ऐसे कवि हैं कि जिन्होंने अपना पूर्ण ग्रन्थ रचने में वीर रस को ही सर्वत्र रखा। इस काल का प्रितिनिधि कवि भूषण है, यह बात निर्विवाद है। यों तो चिंतामणि, मतिराम, बिहारी देव, दुल्हा, पद्माकर, लाल और घनानन्द भी इसी काल की सम्पत्ति हैं, परन्तु कारणवश हमने केवल उपरोक्त कवियों को ही लिया है।

अपनी प्रवृत्ति बदलने में जहां हमारा साहित्य विलासोन्मुख हुआ, वहां एक बड़ा लाभ भी पहुँचा। लाभ यह कि उसे शाही दर्बार में खासा स्थान मिलने लगा। मुगल दर्बार में तो उसने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। अकबर का दर्बार तो ऐसे रंगीलों की महफिल बन गया था। कौनसा दर्बारी था जिसे कविता करनी न आती हो। सम्राट् अकबर स्वयं अच्छी कविता करता था। उस काल में हिंदी हिंदुस्तानियों की भाषा स्वीकार की जा चुकी थी। यूं तो भक्ति काल में प्रेममार्गी भक्त कवियों ने भी उसको अपनाया था परन्तु सांवरे—बांसरीवारे—ब्रजवारे कृष्ण की सूरत पर बलिहार इसी काल के कवि हुए। रसिक रसखान का—

'कहा करै रसखान को, कोउ चुगल लबार।
जो पै राखनहार है, माखन चाखनहार।'

कह कर वृन्दावन में रम जाना इसी काल की विशेषता है।

साहित्य के इतिहास में इस रीतिकाल की आयु सं० १७०० वि॰ से लेकर सं० १६०० वि तक है।

इस पुस्तक में हमने उपरोक्त तीनों कालों से कवियों का निर्वाचन किया है। निर्वाचन किस आधार पर किया गया है यह बतला देना भी आवश्यक होगा। पुस्तक की कविताओं का संग्रह करते समय इस पर पूरी २ दृष्टि रखी गई है कि अश्लीलता कहीं भी न आने पाए। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि हम जो संग्रह अबोध बालक बालिकाओं के हाथों में दे रहे हैं उसे अश्लीलता छू तक नहीं गई है। यद्यपि हमारा मत है कि 'अश्लील वस्तु में शृङ्गार-रस हो सकता है, परन्तु शृङ्गार अवश्य ही अश्लील हो जाए ऐसा कदापि नहीं,' इतना मानते हुए भी हमने शृङ्गार से अपने को बचाया है और फिर कहते हैं कि अश्लीलता तो भूली भटकी भी हमारे पाठक इसमें न देख सकेंगे।

अगली बात निर्वाचन के विषय में यह है कि पुस्तक हिंदी कविता की भाषा का उन्नति-क्रम दिखाने की दृष्टि से लिखी गई है। पहिले चार-कवियों—चंद, जोधराज, जायसी और तुलसी का क्रम, भाषाक्रम से स्पष्ट है। भाषा की दृष्टि से चंद और जोध राज की कविता प्राकृत को लिये हुए है। जायसी और तुलसी अवध के अमर रत्न हैं। कबीर की भाषा भी इसी अवधी का विकसित रूप कही जा सकती है—भले ही वह कालक्रम से पीछे आया है, परन्तु भाषा-उन्नति-क्रम से उसका वह स्थान हमारी समझ में अधिक उपयोगी है।

इनसे आगे सूर, नरोत्तम, रहीम, केशव, भूषण*, रसखान और गुरु गोविंदसिंह को रखा है। इन सभी ने व्रज भाषा में कविता की है इन सबका स्थान कालक्रम से रखा गया है।

अंत में दो कवि—मीरा और बाजीद ऐसे हैं कि जिन में कुछ २ राजस्थानी की पुट भी आगई है।

इस प्रकार हमने इन कवियों को भाषा-दृष्टि से चार भागों में करके रखा है।

इन सब के अलावा एक बात और है, वह यह कि कविताओं के चुनने में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थियों को उनसे कुछ न कुछ प्राप्त हो। कविता संग्रह निर्वाचन के लिये इस बात का पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया है कि उसमें कोई वस्तु विद्यार्थियों पर भार रूप न हो जाये।

यह संग्रह पांडित्य-प्रदर्शन के लिये नहीं, अपितु विद्यार्थियों को अपनी भाषा का कुछ ज्ञान कराने के लिए किया गया है। और इसकी पूरी आशा भी है कि विद्यार्थियों को यह वस्तु अति उपयोगी सिद्ध होगी।

सूर तथा तुलसी के बारे में विद्यार्थी ऐसा ही ध्यान रखते हैं कि सूर ने केवल कृष्ण का और तुलसी ने केवल राम का ही गुण गान किया है। हां प्रायः ऐसा है, परन्तु सूर ने राम पर और तुलसी ने कृष्ण पर कलम उठाई है—

*इस संस्करण में भूषण निकाल दिया गया है।

यूं चाहे इन वर्णनों में इन दोनों कवियों की कलाएं फीकी पड़ गई हों, परन्तु बच्चों को इतना तो जानना ही चाहिए कि सूर ने राम को और तुलसी ने कृष्ण को बड़े सम्मान से स्मरण किया है। इसी बात को जताने के लिये हमने तुलसी की 'कृष्ण गीतावली' तथा सूर के 'श्री रामचरित' में से कुछ अंश उद्धृत किया है।

प्रस्तुत संग्रह में 'बाजीद' एक नई चीज है। बाजीद की कविता अभी अप्रकाशित है। इनके कविता संग्रह की हस्त-लिखित पुस्तक पञ्जाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में विद्यमान है, उसी से हमने मसाला लिया है।

प्रस्तुत पुस्तक के विषय में एक बात और कहनी है, वह यह है हिंदी भाषा में अनुस्वार परसवर्ण और अर्द्ध-चन्द्र की बड़ी मिट्टी पलीद की जा रही है। अनुस्वार और परसवर्ण के विषय में तो हम अधिक जोर नहीं दे सकते क्योंकि वे तो विकल्प रूपेण दोनों में से एक दूसरे के स्थान पर अदल बदल कर आ सकते है, हां एक रूपता उससे भी नष्ट हो जाती है, और अन्याय तो इस बात का है कि अर्द्ध-चन्द्र के स्थान पर भी यह गड़बड़ कर दी जाती है कि कहीं तो अनुस्वार, कहीं अर्द्धचन्द्र। मैं, हैं, हूं आदि में नियमानुसार अर्द्धचन्द्र का प्रयोग होना चाहिये परन्तु प्रायः प्रयोग होता है अनुस्वार का ही। अनुस्वार अंत में जाकर म् की आवाज़ देता है जैसे (स्वयम्) इस प्रकार मैं, हैं, हूं आदि की आवाज़ लिखे अनुसार मैम्, हैम्, हूम्, जैसी होनी चाहिये। इतना होते हुए भीं इन स्थानों पर अर्द्धचन्द्र का काम अनु-स्वार से अच्छी तरह लिया जा रहा है। और ऐसे प्रयोग है [illegible] माने जा रहे हैं।

हमारे कहने का भाव यह नहीं कि हम उपरोक्त प्रचलन से असंतुष्ट हैं बल्कि यह कहना चाहते हैं कि उपयोगिता की दृष्टि से ऐसे प्रयोगों को शिष्ट मान लिया गया है। वास्तव में किसी वस्तु की अच्छाई-बुराई जनता की ग्राहकता पर निर्भर होती है। जिस वस्तु को जनता चाहती है वही मान्य हो जाती है। इसलिये ये प्रयोग भी मान्य कहे जा सकते हैं।

अब यदि इस प्रकार के प्रयोगों में अर्द्धचन्द्र का काम अनुस्वार कर लेता है तो क्या अन्यत्र नहीं कर सकता? हमारे मत में तो अर्द्धचन्द्र का स्थान अनुस्वार ही निभा सकता है—अर्द्धचन्द्र की कोई आवश्यकता नहीं। कहीं कुछ विशेष अवस्थाओं में ऐसा हो सकता है जहां अर्द्धचन्द्र और परसवर्ण का स्थान अनुस्वार न निभा सके—विशेष रूप से इस वस्तु को लेने में कोई आपत्ति नहीं। हां कविता में अनुस्वार ही से अर्द्धचन्द्र का कार्य लेने से छंद-भंग दोष आ जायगा, ऐसी शंका की जा सकती है—परन्तु यह बात भी कोई कठिन नहीं। पाठक लोग लय और स्वर के अनुसार उसे ठीक २ पढ़ सकते हैं।

विस्तार-भय से इस वस्तु को हम अधिक नहीं लिख रहे। यदि अधिक जानना हो तो मेरे मित्र पं० वेदमित्र 'व्रती' साहित्यालंकार प्रभाकर (अध्यापक देवसमाज कालिज फार गर्ल्ज़ लाहौर) द्वारा लिखित "अनुस्वार, परसवर्ण और अर्द्धचन्द्र" नाम की पुस्तक में मेरे विचार पढ़ें, यह शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

हमने अनुस्वार, अर्द्धचन्द्र और परसवर्ण तीनों के स्थान पर केवल एक अनुस्वार से ही काम लिया है। यदि ~

से भिन्न हुआ हो तो वह प्रेस की भूल समझनी चाहिए।

प्रस्तुत संग्रह को हर प्रकार से उपयोगी बनाने का उद्योग किया गया है। इतने पर भी इसमें जो कुछ सार है वह आप लोगों का और जो त्रुटियां हैं वे मेरी अपनी।

अन्त में अपने मित्र श्रीयुत पं० वेदमित्र 'व्रती' का हार्दिक धन्यवाद करता हूं कि जिन्होंने कविता-चयन तथा प्रूफ-संशोधन में मुझे पर्याप्त सहायता दी है।

मैं सहायक-पुस्तक-सूची में दी हुई पुस्तकों के सम्पादक तथा प्रकाशकों का भी धन्यवाद करता हूं।

६, नेहरू स्ट्रीट,
कृष्णनगर, लाहौर
ज्येष्ठ शुक्ला ८, १९९७

मूलराज जैन

सहायक-पुस्तक-सूची

जिन ग्रन्थों से कविताएं ली गई हैं उनका ब्योरा नीचे दिया जाता है ताकि यदि किसी अध्यापक या विद्यार्थी को प्रकरण जानने अथवा अधिक पढ़ने की अभिलाषा हो तो उन ग्रन्थों को देख सके।

१ क—पृथ्वीराजरासो प्रथम खंड। महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित कृत व्याख्या सहित। ओरियंटल कालिज लाहौर का मैगेज़ीन बाबत फरवरी, मई और अगस्त सन् १९३५।

ख—पृथ्वीराजरासो प्रथम खंड—पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, काशी, १८८८।

२ हम्मीररासो—सिलैक्शन्ज फ्राम हिंदी लिट्रेचर, भाग १. सीताम द्वारा सम्पादित, कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९२१।

३ क—जायसी-ग्रंथावली, नागरीप्रचारिणी सभा, १९३५

ख—पदुमावति-डा० सूर्यकांत द्वारा संकलित शब्द-सूची सहित, पंजाब युनिवर्सिटी, लाहौर, १९३४।

४ क—तुलसी-ग्रन्थावली—काशी-नागरी प्रचारिणी सभा, १९८०।

ख—रामचरितमानस—कोई अच्छा संस्करण।

ग—विनयपत्रिका—गीता प्रेस, गोरखपुर।

५ कबीर वचनावली—नागरीप्रचारिणी सभा, १९१६।

६ संक्षिप्त सूरसागर—पं० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० १९७९।

७ सुदामा-चरित्र-हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९१६ ।

८ रहीम रत्नावली-साहित्य सेवा-सदन, काशी, सं० १९८५

९ केशव-कौमुदी (रामचंद्रिका टीका सहित)—साहित्य सेवा-सदन, सं० १९८०

१० रसखान—नागरीप्रचारिणी सभा, १९२९ ।

११ गुरुगोविंदसिंह—सीताराम का सिलेकशन्ज़ भाग ४ ।

१२ क—मीरा-कविता-कौमुदी भाग १ हिंदी-मन्दिर, प्रयाग, सं० १९९०

ख—स्टोरी आफ मीरा—गीताप्रेस, गोरखपुर, १९३७ ।

———

चंद बरदाई

चंद हिंदी भाषा का सब से पहला महाकवि माना जाता है। पृथ्वीराजरासो के अनुसार इसका जन्म और मरण महाराज पृथ्वीराज के साथ ही हुआ था। इसका जन्म लाहौर में सं० १२०५ वि० में हुआ था। इस के पिता का नाम वेण था। चंद दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज का मित्र, राजमन्त्री तथा राजकवि था।

चंद का मुख्य ग्रंथ 'पृथ्वीराजरासो' है जिस में लगभग १००००० छंद और ६९ खंड हैं। इस ग्रंथ में पृथ्वीराज तथा उसके समय का साधारण इतिहास वर्णित है। इसके सम्वाद तथा घटनायें प्रायः इतिहास की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं, इसलिये कई विद्वान इसे जाली समझते हैं। परन्तु इतने बड़े ग्रन्थ को एकदम जाली कह देना ठीक नहीं जंचता। जिस रूप में रासो आज मिलता है उसका बहुत अंश जाली हो सकता है, परन्तु इस में प्रक्षेप अधिक होने के कारण असल तथा जाली को जुदा करना टेढ़ी खीर हो रही है।

रासो में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। चंद ने छप्पय लिखने में बड़ा नाम पाया है। रासो को यद्यपि वीरगाथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा जाता है और वी रस उस में अपना विशेष स्थान रखता है, परन्तु इ यह भाव नहीं कि अन्य रस उस में न आ पाए हों। राज शृङ्गार उस में अनोखे ही ढ़ंग से आया है। ऋतु

में बड़ा चमत्कार और मनोमोहकता है। अलंकारों का प्रयोग भी अच्छा हुआ है।

रासो का विषय

कवित्त—

दानव कुल छत्रीय नाम दुढ़ा रष्पस वर।
तिहिं सुजोत प्रिथिराज सूर सामंत अत्थि भर।
जीह जोति कविचन्द रूप संजोग भोग भ्रम।
एक दीह उप्पन्न इक्क दीहै समाय क्रम।
जथ कत्थ तत्थ होई निर्भये जोग भोग राजन लहिय।
वज्रङ्ग-बाहु अरिवलमलन ता कित्ती चंदह कहिय॥१॥

अनल कुंड की रचना

छन्द रासा—

कारणं जग्गि बंभाणि मानवं रच्चयं कुंड मंडे घणं थानयं।
आसणं दिव्य देवान आह्वानयं आसुरं कीन उच्चिष्ट उत्थानयं ॥२॥

दूहा—

चतुराननि किय जग्गि कजि सजि मंडप सुस्थान।
मन आसुर अणसंकि सह किय उच्चिष्ट उथान ॥३॥

कवित्त—

चतुरानन मनि चिंति असुर वध अवनि विचारिय।
जग्गि जीव उच्चिष्ट करै कातर कृत हारिय।
सुरनि अंस संग्रहै हव्विनह हव्विय उववह।
सो उपाव संजिए जाहि संवहै असुर सह।
निम्मोंस सूर संग्राम भर अरि असंष षंडै सुषल।
सम धरै जग्य कारण सुकलि विमलि सृष्टि सोभै सकल ॥४

गालव रिषि सिष्य उत्तंग दी विद्या ई विधि क्रम अंग ।
गुरु दष्षिना काज गुरु जच्चै गुरुपतनी तव संगी विरच्चै ॥५॥
कुंडल जच्चि षत्रिया कन्नं जो अप्पै सो दष्षिन दिन्नं ।
चल्यो रिष्षि चमक्के तासं, गुरु गुरुपतिनी कीध प्रणामं ॥६॥
चिंतित इष्ट चल्यो रिषि राहं, संपत्तौ सुसेष नृप ठाहं ।
जच्चे कुण्डल छत्रिय पासं, सोइ समप्पि दिद्ध वर तासं ॥७॥
विप्र प्रसंसि प्रसंसे कुण्डल, कहीउ डर तच्छिक जत्तत पल ।
ले कुण्डल चल्यो रिषि सम्मुनि, राज सलाघि विप्र अन्यो अनि॥८॥
क्रमयो राह रिष्षि चंचल चर छलि तच्छक लिन्ने कुण्डल वर ।
क्रम्यो विप्र पूठि अति चंचल, धरि अहिरूप गयो सु रसातल ॥९॥
विल षोदै ठट्टौ रिषि तासं, दुस्मण चिंति विहत्थ विरामं ।
अस्तुति इंद्र करन लग्गो रिषि, षिनकु षोदि विल मण्डलसमतषि।१०
विप्र नागपुर पैठो तासं, धूम प्रगट्टै मंत्र विरामं ।
प्रगट्यो अस्त्रं प्रपीलक उद्धृत, अप्पे कुण्डल नाग मन्त्रि हित ।
प्रहि कुण्डल अप्पे गुरु वासं, गुरु विद्या दीनी अभिरासं ॥११॥

दूहा—

विल अथग्ग तिनी थान भौ, वहु संवच्छर वीति ।
प्रिथुल प्रमान करार भौ, जिमि जिमि काल परीति ॥१२॥

वसिष्ठ ऋषि का वहां तप करना और उनकी नन्दनी गौ का उस अथाह विल में गिरना

पद्धरी—

किहि समय ताम उचिष्ट रिष्षि, धर अटन करत सम आय सिष्पि ।
सिव पुरह सुब्भ तारन्न ब्रन्न, सुभ थान दिष्पि आमोदि मन्न ॥१३

सिव थान इष्पि आश्रम्म ताम, अन्नेक रिष्प किय रंजि विश्राम।
इक समय चरंती होम धेन, सामीप सपत्ती बिल्ल तेन ॥१४॥
अघ इष्पि इष्पि भ्रमेव गाव, मुंछेव पारिय मधि बिल अथाव।
ही होम काल आई न धेन, चिंतै सु रिष्पि कारन्न कंन ॥१५॥
बल तप्प लह्यौ गोपाल थान, तहं गयो रिष्पि सिष्पिह समान।
उपकंठ बिल्ल टड्ढौ सुरिष्पि, नन्दिनी नाम कहि सद्दिलष्पि ॥१६॥
क्रंदंति गाव संपत्त वच्च, हंभार कीय सुर उच्च तच्च।
सुन्यो सुसद्द अथ सुवन ब्रह्म, चित्यो सुलष्पि जनि तास क्रम्म ॥१७॥

वसिष्ठ ने अपनी गाय निकालने को गंगा का आह्वान किया

दूहा—

चिंति अनेकह विधि रिषि बिल नंदिनी निकास।
मंत्र रूप गङ्गा तवन लगा करन तंहास ॥१८॥

भुजंगी—

नमो देवि गंगे नमो मात गंगे, द्रवै-रूप कामंडलं ब्रह्म संगे।
त्रयं पंथ त्रेयं गुनं ते निवासं, वरं वृन्दारका सेई जासं ॥१९॥
हिमं सैल भेदे सुभेदे धरायं, सतै रूप कायं सुरायं नरायं।
मधू छेदनं पाइ प्रावेसकारी, सतं मुष्ष सारूप्य सामुद्रधारी ॥२०॥
हली सेत झल्ली जलद्धी सुसद्दं, अचै सेषपीरं सुमानं समुद्दं।
धरावल्लि भागीरथी विश्व भागं मिटै अग्घ ओघं तनं दुष्प दागं ॥२१॥
सुभं उच्च अंदोल वीची विराजं मनो स्वग्ग आरोह सोपन साजं।
नरं नीच कारं तटं श्रोत प्रम्मै, तवै अव्व देवं गुन स्वग्ग श्रम्मै ॥२२॥
परै मज्झ कल्लेवरं धंसि छुट्टै, भपै कागलं गिद्ध गोमाय लुट्टै।
तटंश्रोत झल्लैथलंवरि हल्ले, पिनं मज्झि अंदोल वीचि हल्ल ॥२३॥

तिनं आतमं देह आनूप धारै, वरै उर्व्वसी चामरं विज्जि नारै।
धरै ध्यान तव्वै तनं दुक्ख दव्वै, मिटै मज्जन अग्घ साजम्म सव्वै।
झलक्कंत गङ्गा तनं तेज सोहै, मनो दाहनं दाह दाहन्न जोहै ॥२४॥

गंगा के रज का माहात्म्य

दूहा—

जब लगि तनु रज मात की रहै अंग सो लाइ।
तब लगि नरक न संपजै क्रम्म पाप सह जाइ ॥२५॥

गंगा का नाम-माहात्म्य

गाथा—

क्रम्मं अघ सह भंजै दिव्यं देहं देव सारूपं।
स्त्रगं करै सुगामी अद्धं नाम रसन रढियाइ ॥२६॥

गंगा का उभरना और गो का तैरकर निकलना

दूहा—

सुनि गङ्गा सुतवन्न रिषि अप्पौ भरे पयाल।
ताहि तरंतह नंदिनो आई तटह द्वाल ॥२७॥
रिष्षि सिष्ष धाये सु सब धाँर कड्ढी तब गाव।
तिहि कड्ढत सन्दाकिनी गई पयालह ठाव ॥२८॥
विल अथाह दिष्षौ सुरिषि भई चिंत पर भाति।
को निकरै या मध्य तै गर्त सपूरित गात ॥२९॥

वसिष्ठ का उस अथाह विल पूरने के लिये हिमालय के पास जाना

छंदबाधा—

चिंतहि।दपि रिष्पि विल दुक्कति, उर लग्गी चिंता अति इतहित।
पुच्छे रिष्पि पास क्रितकामं, लहै न कोइ वुद्धि वल तामं।

चिंत्यौ ध्यान अप्प रिषिराजं, याहि सपूरै कौ थिर काजं।
धरत ध्यान रिष्पि उर भासं, सत्त पुत्र हेमंगिरि जासं ॥३०॥
पुत्र एक जंच्यौ तिस पासं, विल पूरै पूरै उर आसं।
क्रम्यौ रिष्पि राज दिसि उत्तर, देषी मन आनन्द दिव्य घर ॥३१॥
गौ गिरिराज पास रिषिराजं अप्यौ अग पति आसन साजं।
मेना सहित आनि पग लग्गे, अरघ पाद करि अचमन लग्गे ॥३२॥

दूहा—

सुनि सुवचन गिरिराज कौं कहि सब कारन बात।
पुत्र एक जंच्चू सु तुम गर्त सपूरित गात ॥३३॥

हिमालय का अपने सब पुत्रों से ऋषि का आगमन कहना

कवित्त—

तव सुचित गिरि ईस पुत्र सद्दे निज सव्वं।
किहि कारन षिति पात्त अप्प रप्पौ कुल अव्वं।
इह सुरिष्षि सुतब्रह्म नाम वाच्चिष्ट महामति।
ध्रम्म पार तप पार श्रुत प्रम्म क्रम्म गति।
जच्चै सु सोह एक कह चिंति काज काजह सुरिषि।
संवसो वास विल उद्धरौ पद्पामो परमुच्च अषि ॥३४॥

हिमालय के बड़े पुत्र का उत्तर देना कि वह निषिद्ध भूमि है

कवित्त—

तव अप्पहि अगपुत्र सुनहु गिरिराज राज चित्त।
पिता वाच्च रिषि काज कोई छंडौ सुक्रम्म हित्त।
इह सुभूमि निप्पेद थान जानहु तुम सव्वं।
ध्रम्म क्रम्म अरु देव सेव जाजन नह अव्वं।

कुच्छत्त देस कारज विक्रम तह सुकेम किज्जे गमन ।
अप्पियै प्रान मंगै जु रिषि दुष्ट थान थप्पै न तन ॥३५॥

वसिष्ठ का कहना कि उस भूमि को पवित्र और रम्य कर दूंगा

कवित्त—

तव जंपै सुत ब्रह्म सुनौ गिरिराज पुत्र सम ।
इस सुभूमि बिल थान रम्य मंडौ सुतप्प दम ।
सवै देव इह वास तित्थ सव्वै रिषि सव्वं ।
विप्र ब्रिच्छवर वल्लि सगुन गंध्रव सव कव्वं ।
किन्नरह क्रम्म सुत ध्रम्मधर मूर्तिमान सज्जहि सुथिर ।
हरि ईस वंभ संवास सह जौ आश्रंसै एक गिर ॥३६॥

वहां वाल्मीकि ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं, अतः यह पवित्र भूमि

पद्धरी—

रसनीक ठाम वाचिष्ट राज, तहं वसहिं देव देवह विराज ।
इह थान पुब्बक्कित जुग प्रमान, रिषि कियौ तप्प जज्जित निधान ॥
वाल्मीकि वीर इक वधिक रूप, अति पाप क्रम्म आवात कूप ।
भंजै सुमग्ग तिहि भूमि थान, पायौ जु हरी दरसन निधान ॥
चित संप चक्र गद पद्म वाह, तन स्याम सुभित पीतह प्रवाह ।
दिप्यौ जु लच्छि तन रूप भिल्ल, कीनी न हतन तिन रत्ति ढिल्ल ॥
धायौ सुद्रिष्टि गोविंद वीर; जानी न पुव्व ध्रम्मह सरीर ।
छिति दिप्प द्रिष्टि कामह करूर; वंटै जु पाप मथ्थं सधूर ॥४०॥
भगनी कि वन्ध त्रिय मात पुत्त, वंटहिं कि पाप पापह सजुत्त ।
तिहिं जाइ कह्यौ वर भिल्ल मात, वंट्यौ न पाप किहि अंग थान ॥

लग्यौ सु चरण कर धनुष तोरि, आवात वात वानी सजोरि।
व्याघात नाम सोइ वधिक थान, भ्रम भ्रम्यौ इक्क त्रिच्छह नियान॥

गाथा—

मारं मारय कहियं गहियं भिल्ली अनन्नयो नेहं।
भेदय तु चक्कमट्टी दिट्टी निय अव्व यो देहं॥४३॥

दूहा—

बांवी फिरि अंगह वली अंग उदैही नाम।
झीन शब्द मुष नीसरह धीर धीर कै राम॥४४॥

हिमालय के मध्य पुत्र नन्द का जाना स्वीकार करना

कवित्त—

सुनि सुवत्र गिरि सुतन सव्व गृह मतउ विचारही।
मध्य पुत्त गिरिनन्द सोइ उच्चरयो मध्यि सह।
हो सपंगु विन पाय क्रम्मि सकौं न राह दुर।
जाय परौं षिति षात करौं उद्धार वाच धुर।
पित वाच राम मज्ज्यौ सुतन वचन हरिचन्द अव्ववहि।
सोइ वाच तात क्रित काज रिषि कोइ सु चुक्कै मुष्ष महि॥४५॥

पद्धरी—

अर्वुदा सच्चल अर्वुद ति नाम, क्रित काम पयह थोरौ सुकाम।
धर नंद नंद नंदन प्रमान, उद्धार सार लै जाहु थान।
रुंधी सुगाय त्रिय व्याघ्र क्रोध, आयौ जुराज राजन-प्रव ध।
कुरुलाय करिय करुणा सुधेन, छंडाइ राजराजन वलेन॥४६॥
घन घरिग कियो जज्जर सरीर दिष्यौ न सिंह तहं निमिष तीर।
सुप्रसन्न गाय धेनक्क सुरिष्षि, कीनों जु अंग द्रप्पक त्रिसिष्ष।
थिति थान दिष्षि अर्वुदा नाग, रिषि कहै जोग हौं चलन साज॥४७॥

अर्बुद नाग का कहना कि यदि मेरे नाम से तीर्थ प्रसिद्ध हो तो मैं नन्दगिरि को उठा ले चलूं।

कवित्त—

तव कहि अर्बुद नाग मित्त गिरि नंद नंद हिय।
हुं उद्धरि ले जाहुं तित्थ मो नाम थान दिय।
तव नन्दी उच्चरहौ होहि तो नाम तित्थ हित।
सुरिषि कज्ज सुद्धरहि रिन उद्धरहि वाच पित।
तत्थी सुवात अर्बुद उरग जय तवि सुर नंषे सुमन।
पय परसि मात पित बंध अग सुय सुहेम कीज्यौ गमन ॥४८॥

अर्बुद नाग का नन्दगिरि को उठा लाकर बिल में रख देना

तव निय अर्बुद नाग कन्ध उद्धर्‌यौ नन्दिनग।
मग्गि अग्गि गिरि राज रिष्पि संचर्‌यौ सत्थ मग।
साधु साधु सुर सुरह सुमन नंषे उच्चरि सह।
रिष्पि अग्ग गिरि पच्छ आइ संपत्त सत्थ षह।
प्रावेस कियो गारत्त गिरि जय जय वच विसरीर हुअ।
भौ मगन सुतन सव्वै सुगिरि उवर्‌यौ नाक सुनाक धुव ॥४९॥

पुष्प वृष्टि सहित जय जय कार

दूहा—

उवर्‌यौ नाक सुनाक धुव दिव अस्तुति परिमान।
पुहुप व्रिष्टि हत्थह करिय जय जय वंध्यो तान ॥५०॥

(पृथ्वीराज रासो से)

जोधराज

कवि जोधराज ने १८ वीं शताब्दी विक्रमी में निमराना के राजा चन्द्रभान के दरबार में अच्छा आदर पाया था। वह अत्रि गोत्र के एक बालकृष्ण नामक ब्राह्मण का पुत्र था। राजा चन्द्रभान निमराना का राजा था जो आधुनिक अलवर राज्य का एक भाग है। एक बार राजा चन्द्रभान ने जोधराज से रणथंभोर के हम्मीरदेव के पराक्रम का वृत्तांत सुनने की इच्छा प्रकट की। जोधराज ने अपने स्वामी की आज्ञा को शिरोधारण किया और हम्मीररासो नाम की कविता को सं० १७८५ वि० में समाप्त किया।

इस कविता का संक्षेप यह है। दिल्लीपति अलाउद्दीन खिलजी का एक दरबारी था महिमशाह। उससे किसी बात पर अप्रसन्न होकर अलाउद्दीन ने उसे देश से निकाल दिया। अलाउद्दीन के भय से किसी ने इसे शरण न दी। आखिर रणथंभोर के हम्मीर देव ने इसका अपने यहां स्वागत किया और इसे शरण दी। अलाउद्दीन को जब इस बात का पता लगा तो उसने हम्मीर पर आक्रमण कर दिया जो इस कविता के अनुसार १२ वष तक चला। इस युद्ध में हम्मीर को विजय प्राप्त हुइ, परन्तु वह मुसलमानी ध्वजों को आगे करके दुर्ग की ओर लौटा। उन ध्वजों को देखकर दुर्ग की स्त्रियों ने सोचा कि राजपूत सेना का नाश करके मुसलमानी सेना हम पर आक्रमण करने आरही है। इसलिये वे सब सती हो गईं। यह देखकर हम्मीर को बहुत दुःख हुआ और उसने आत्महत्या करली।

यहां दिया हुआ संदर्भ महिमशाह को अलाउद्दीन द्वारा देश-
० की आज्ञा से आरम्भ होता है।

अथ हम्मीर-रासो।

दोहरा-छंद

हुरम वचन सुनि शाह तव मन विचार तहं कीन।
वेगम जाति जु तीय की इन मरिवे मन दीन ॥१॥
जाहु सेख इत मनि रहो जहं लगि मेरो राज।
जो राखै ताको हनूं प्रकट सुसाज समाज ॥२॥
कट्टन गर्दन जोग तू कीन्हो कुविधि खराव।
को रक्खै या भूमि पर राखि करै को ज्वाव ॥३॥

छप्पय छन्द

यह महि मण्डल जितो।
आन मेरी सब मानै।
खूनी रक्खै कौन।
कोउ ऐसा तू जानै ॥
हम ते वली वताय।
ओट जाकी तू तक्कै।
वचै न काहू ठौर।
एक विन गए न मक्कै ॥
कर जोरि सेख इमि उच्चरै।
वली एक साहिव गिनूं ॥
निर्वीज धरा कवहूं न है।
मैं हमीर श्रवननि सुनूं ॥४॥
वत सु सेख शिर नाय।
रजा हज़रति जो पाऊं।
जो न गिनै पतिशाह।
शरन मैं ताकी जाऊं ॥

तुमहिं न नाऊं शीश ।
नहिन फिर दिल्लिय आऊं ।
जुद्ध जुरै नहिं टरौं ।
हत्थ तुमको जु दिखाऊं ॥
यह कहत सेख सल्लाम किय,
तबहिं चला चलचित्त हुव ।
निज धाम आय अप अनुज सों,
विवर विवर बातैं जु हुव ॥५२

छन्द पद्धरी ।

आये जु सेख वर तब सरोप ।
जिय जान्यो अपनो सकल दोष ॥६॥
मिलिये जु मीर गवरू सुधाय ।
चल-चित्त देखि तिहिं पूछि जाय ॥७॥
केहि हेतु आज चिन्तन सुभाय ।
किहि कियव वैर सो मुहिं वताय ॥८॥
तिहिं मारि करूं तत्काल टूक ।
हिय क्रोध अग्निसों उठत हूक ॥९॥
को करै वैर बिन कर्म्म वीर ।
मिटि गये अन्न जल को सु सीर ॥१०॥
तिहि कोन रहै रक्खै सु कौन ।
यह जानि मर्म्म तुम रहो मौन ॥११॥
यह सुनत मीर गवरू सुभाय ।
सो पर्यो धरनि मुर्च्छा सु खाय ॥१२॥
तदि कर्यो बोध बहु बिधि सु ताहि ।
नहिं करौ शोच रहु निकट साहि ॥१३॥

तब कहै मीर गबरू सु ताहि ।
सब तजो देश मक्के सु जाहि ॥१४॥
कै रहो राव हम्मीर पास ।
तन रहैं खुशी नाशै जु त्रास ॥१५॥
तब चलिब सेख तजि साहि देश ।
सब सुभट संग लिन्ने सुवेश ॥१६॥
सत पंच सेन गजराज पंच ।
रथ सत्थ लिये निश्च नारि संच ॥१७॥
सब रखत साज निज संग लीन ।
दासी जु दास सुन्दर नवीन ॥१८॥
सजि साज बाज डेरे अनूप ।
लदि ऊंट किते संग चलिय जूप ॥१६॥
चढ़ि सेन सज्यो निज संग बास ।
बज्जिब निशान गज्जिब सुताम ॥२०॥
मग चलत करत मृगया अनेक ।
मिलि चलिय सकल बरवीर एक ॥२१॥
जिहिं मिलै राउ राजा सु जाय ।
पतिसाह वैर सुनि रहै चाय ॥२२॥
चहु चक्क फिरयो महिमा सुधीर ।
नहिं कह्यो रहनि काहू सु पीर ॥२३॥
है दीन सेख देखे सु भारि ।
बिन राव दशों दिशि फिरिब हारि ॥२४॥
तब तक्कि सेख हम्मीर राव ।
सोइ आइ शरन परसे सु पाव ॥२५॥२५॥

दोहरा छन्द

गढ़ वंका वंको सुधर,
वंका राव हमीर ।

लखि प्रतीति मन महं भइय,
हरषे महिमा मीर ॥२६॥
देखि जलाशय बिटप बहु,
उतरि सु डेरा कीन ।
हय गय बन्धे तरुन तर,
खान पान विधि लीन ॥२७॥
डेरा ड्योढ़ी कर खरे,
करी बिछायति बेस ।
करि मिसलति कौंसिल जुरी,
सब भर सरस सुदेस ॥२८॥
मन्त्री मन्त्र सु पूछि तब,
इक चर लानि सु बोलि ।
जाहु राव के पास तुम,
कहो बात सब खोलि ॥२९॥
प्रथम सलाम कहो जु तुम,
बिरत कहो सु विसेख ।
हुकम होय जो मिलन को,
तो हाजिर है सेख ॥३०॥
इतने मैं जानी परै,
पन भ्रम प्रीति प्रतीति ।
हर्ष शोक यहि गति लख्यो,
तुम जानत सब रीति ॥३१॥
तब सु दूत गय राव पहं,
करी खबर दर्वान ।
बोलि हुजूर सु दूत को,
पूछत कुसल सुजान ॥३२॥

सकल बात सुनि दूत मुख,
हर्ष राव बहु कीन ।
तवहिं उलटि पाठ्यो सुवह;
सेख बुलाय सु लीन ॥३३॥

नाराच छंद ।

चल्यो जु सेख राव पहं बनाय साज कीनयं ।
तुरंग पंच नाग एक साज साजि लीनयं ॥३४।
कमान दीय टंक्नी सुदेस मुल्लतान की ।
कृपान एक वेस देस पालक सुजान की ॥३५॥
लिये सु दोय वज्र लाल एक मुक्तमालयं ।
कुही जु एक दोय बाज स्वान दोय पालयं ॥३६॥
सवार एक आप ही सवै पयाद चल्लियं ।
रहे तनिक्क पौरि जाय फेरि अग्ग हल्लियं ॥३७॥
सु वेतहार अग्ग जाय राव को सुनाइयं ।
हमीर राव वेगि आप रावतं खंदाइयं ॥३८॥
चले लिवाय सेख को जहां जु राव वट्ठियं ।
सभा समेत राव देखि सेख को सु उट्ठियं ॥३९॥
मिलै उभै समाज सो कुसल्ल छेस पुच्छियं ।
परस्सि पानि पाव सेख हाथ जोरि सुच्छियं ॥४०॥
करी जु अग्ग सेख भेट वुल्लियों सु वाचयं ।
सरण्णि राव राखि राखि मैं सरन्नि साचयं ॥४१॥
फिर्‌यो सु मैं जु दीन दोय खानि जाति सव्वयं ।
जितेक राज राव ताहि छत्रि जाति सव्वयं ॥४२॥
दिसा दसों जितेक भूप और वीर वंक जे ।
रहो कह्यो सु कौन हू रहूं तहां सुधीर जे ॥४३॥

हंसे हमीरराव बात सेख की सुनंत ही ।
कहा अलावदीन पातसाह सो भनंतही ॥४४॥
रहो यहां अभै सदा हमीरराव यों कहै ।
तजूं जु तोहि प्राण साथि और बात यों कहैं ॥४५॥

चौपाई छंद

राव हमीर नजर सब रक्खिय ।
वचन सेख को यह विधि भक्खिय ॥४६॥
तन धन गढ घर ए सब जावैं ।
पै महिमा पतिसाह न पावैं ॥४७॥
कहै सेख प्रण समुझि सु किज्जिय ।
मेरी प्रथम अर्ज सुन लिज्जिय ॥४८॥
दसो दिसा मों मैं फिरि आयव ।
जिते खान सुलतान सु गायव ॥४९॥
राजा राव रान जितने जग ।
दीन दोय देखे सु अगम मग ॥५०॥
बांध तेग साहस करि कोई ।
तजै लोभ जीवन को सोई ॥५१॥
यह जिय जानि बास मोहि दीजै ।
सेख राखि राखि सरनै जस लीजै ॥५२॥
इतनी धरा सेस सिर होई ।
कहै माहि रक्खै नहिं कोई ॥५३॥

छप्पय छंद

वार बार क्यों कहै,
सेख उतकर्ष बढावै ॥
एक बार जो कही,
बहुरि कछु और कढावै ॥

प्रथम वंस चहुवान,
टेकि गहि कबहूँ छंडै ॥
बहुरि राव हम्मीर,
हठ न छुट्टै तन खंडै ॥
थिर रहहु राव हम उच्चरै,
न डरि न डरि अब सेख तुम ॥
उगे न सूर जो तजहुं तो,
चलहि मेरु अरु भुम्मि ध्रुव ॥४५॥
बकसि सेख को बाजि,
साज कंचन के साजे ॥
मुक्तमाल सिरपेंच,
जटित हीरा छवि छाजे ॥
सकल सत्थ सिरपाव,
साल दिन्नव अति भारिय ॥
पंच लक्ख को पट्ट दियो,
आदर सुव कारिय ॥
दिल्ली सुठार सुन्दर इकै,
तेहि देखत हिय हर्षयउ ॥
उछाह सहित उठि सेख तव,
आनन्द मंगल वर्षयउ ॥५५॥

(हम्मीररासो से)

मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी का जन्म सं० १५६७ के लगभग एक मुसलमान घराने में हुआ था। इसने हिन्दु सिद्धान्तो का भली प्रकार अध्ययन किया। कबीर के सिद्धान्तोंका प्रभाव भी इस

स्पष्टतया प्रकट होता है। अमेठी के राजा से इसने बहुत आदर प्राप्त किया। कहा जाता है कि इसी के आशीर्वाद के फलस्वरूपस्वरूप राजा को एक पुत्ररत्न का लाभ हुआ। इसकी क़ब्र आज तक अमेठी में मौजूद है।

बचपन में शीतला के कारण इसकी एक आंख जाती रही। किसी ने इसकी कुरूपता को देखकर हंस दिया तो इसने बड़ी गम्भीरता से उससे पूछा "मोहिं का हंससि कि कोहरि हिं।" इस से वह बड़ा लज्जित हुआ। इस घटना से प्रतीत होता है कि जहां वह कुरूप था वहां गम्भीर तथा शान्तचित्त भी था।

उसके लिखे तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। 'पद्मावत' में चित्तौड़ की प्रसिद्ध महारानी पद्मावती की कहानी है। जायसी यद्यपि मुसलमान था फिर भी कहानी लिखने में उसने किसी प्रकार धार्मिक पक्षपात नहीं किया। मुसलमान बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के अन्याय का विरोध और राणा रतनसेन के प्रति उसकी सहानुभूति उसके ग्रन्थ से स्पष्ट झलकती है। धार्मिक विद्वेष उसमें तनिक भी न था। उसने जैसे अपने पीर पैगम्बरों की स्तुति की है उसी प्रकार हिंदू देवी देवताओं की उपासना में भी अपने उदार हृदय का परिचय दिया है। 'आखिरी कलाम' में उसने भगवद्-भक्ति तथा संसार की निस्सारता पर बड़े रोचक ढंग से लिखा है।

तीनों ग्रन्थ दोहे, सोरठे और चौपाइयों में लिखे गए हैं। यह ढंग इतना पसन्द किया गया कि हिंदी के महाकवि तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' में इसी परिपाटी का अनुसरण किया।

घन अंवराउं लाग चहुं पासा, उठे पुहुमि हुति लागु अकासा।
तरिवर सबइ मलय गिरि लाई, भई जग छांह रइनि होइ छाई।
मलय समीर सोहाइ छांहा, जेठ जाड लागइ तेहि मांहा।
ओहीं छांह रइनि होइ आवइ, हरिअर सवइ अकास देखावइ।
पथिक जउं पहुंचइ सहि घामू, दुख विसरइ सुख होय बिसरामू।
जेह वह पाई छांह अनूपा, बहुरि न आइ सहहि यह धूपा।

अस अंवराउं सघन घन बरनि न पारउं अंत।
फूलइ फरइ छव-उ रितु जानउं सदा वसंत ॥३॥

फरे आंव अति सघन सोहाए, अउ जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पींड सउं पाके, वडहर सो अनूप अति ताकें।
खिरनी पाकि खांड असि मीठी, जाउनि पाकि भंवर असि डीठी।
नरिअर फरे फरी फरुहुरी, फरी जानु इंदरासन-पुरी।
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू, मधु जस मीठ पुहुप जस वासू।
अउरु खजहजा आउ न नाऊं, देखा सब राउन अंवराऊं।
लाग सबइ जस अंब्रित साखा, रहइ लोभाइ सोइ जो चाखा।

गुआ सुपारी जाइफर सब फर फरे अपूरि।
आस पास घनि इंविली अउ घन तार खजूरी ॥४॥

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा, करहिं हुलास देखि कइ साखा।
भोर होत बासहिं चुहिचूही, बोलहिं पांडुकि एकइ तूही।
सारउ सुआ जो रहचह करहीं, कुरहिं परेवा अउ करबरहीं।
पिउ पिउ लागइ करइ पपीहा, तुहीं तुहीं करि गुडुरू खीहा।
कहू कहू करि कोइल राखा, अउ भंगराज बोल बहु भाखा।
दही दही कइ महरि पुकारा, हारिल बिनवइ आपनि हारा।
कुहुकहिं मोर सोहावन लागा, होइ कोराहर बोलहिं कागा।

जावंत पंखि कही सब बइठे भरि अंबराउं।
आपनि आपनि भाखा लेहिं दई कर नाउं ॥५॥

पञ्ग पञ्ग कूआं बाउरी, साजे बइठक [illegible]
अउर कुंड सब ठाउंहिं ठाउं, सब तीरथ अउ तिन्ह के [illegible]
मठ मंडप चहुं पास संवारे, तपा जपा सब [illegible]
कोइ सु-रिखेसुर कोइ सनिआसी, कोइ सु राम-जति कोइ [illegible]
कोइ सु-महेसुर जंगम जती, कोइ एक परखइ देबि [illegible]
कोई ब्रहमचरज पंथ लागे, कोइ सु-दिगंबर आछहिं [illegible]
कोइ संत सिद्ध कोइ जोगी, कोइ निरास पंथ बइठ [illegible]

सेवरा खेवरा वान पर सिधि-सायक अवधूत।
आसन मारे बइठ सब जारहिं अ तम--भूत ॥६॥

मान--सरोदक देखे काहा, भरा समुद अस अति [illegible]
पानि मोती असि निरमर तासू, अंब्रित आनि कपूर [illegible]
लंक-दीप कइ सिला अनाई, बाँधा सरवर घाट [illegible]
खंड खंड सीढी भंई गरेरी, उतरहि चढहि लोग चहुं [illegible]।
फूले कंवल रहे होइ राते, सहस सहस पखुरिन्ह कइ [illegible]।
उलथहिं सीप मोती उतराहीं, चुगहि हंस अउ केलि कराहीं।
कनक पंख पइरहिं अति लोने, जानउ चितर कीन्ह गाढि सोने।

ऊपर पाल चहूं दिसा अंब्रित फर सब रूख।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस अउ भूख ॥७॥

पानि भरइ आवहिं पनिहारी, रूप सरूप पदुमिनी नारी।
पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं, भंवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।
लंक-सिंघिनी सारंग-नयनी, हंस-गामिनी कोकिल-बयनी।
आवहिं झुंड पांतिहिं पांती गवंन सोहाइ सु भांतिहिं भांती।
कनक-कलस मुख-चंद दिपाहीं, रहसि केलि सउं आवहिं
गा सउं वेइ हेरहिं चखु नारी, वांक नयन जनु हनहिं
पेंत मेवावरि सिर ता पाईं, चमकहिं दसन बीज

मानउं मयन मूरती अछरी बरन अनूप ।
जेहि कइ असि पानिहारी सो रानी केहि रूप ॥८॥

ताल तलाउ सो बरनि न जाहीं, सूझइ वार पार तेहिं नाहिं ।
फूले कुमुद केति उंजिआरे, जानउं उए गगन महं तारे ।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी, चमकहिं मंछ बीजु कइ बानी ।
पइरहिं पंखि सो संगहि संगा, सेत पीत राते सब रंगा ।
चकई चकवा केलि कराहीं, निसि क बिछोहा दिनहिं मिलाही ।
कुरलहिं सारस भरे हुलासा, जिअन हमार मुअहिं इक पासा ।
केवा सोन ढेंक बग लेदी, रहे अपूरी मीन जल-भेदी ।
नग अमोल तिन्ह तालहिं दिनहि बरहिं जस दीप ।
जो मरजीआ होइ तहं सो पावइ वह सीप ।९।

पुनि जो लागु बहु अंम्रित बारी, फरी अनूप होइ रखवारी ।
नउ--रंग नींउं सुरंग जंभीरी, अउ बदाम बहु भेद अंजीरी ।
गलगल तरुंज सदा-फर फरे, नारंग अति राते रस भरे ।
किसिमिस सेउ फरे नउ पाता, दारिउं दाख देखि मन राता ।
लागु सोहाई हरिफा--रेउरी, उनइ रही केला कई घउरी ।
फरे तूत कमरख अउ नउंजी, राइ-करउंदा बेरि चिरउंजी ।
संख-दराउ छोहारा डीठे, अउरु खजहजा खाटे मीठे ।
पानि देहिं खंडवानी कुअंहिं खांड बहु मेलि ।
लागी घरी रहंट कइ सींचहिं अंम्रित पेलि ।१०।

पुन फुलवारि लागु चहुं पासा, बिरिख बेधि चंदन भइ बासा ।
बहुत फूल फूली घन बेइली केवरा चंपा कुंद चबेंइलीं ।
सुरंग गुलाल कदम अउ कूजा, सुगंध--बकाउरी गंधरब पूजा ।
नागेसर सतिबरग नेवारी, अउ सिंगार --हार फुलवारी ।
सोनिजरद फूली सेवती, रूप--मंजरी अउरु मालती ।

गोस्वामो जी काशी के प्रसिद्ध सन्यासी रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा में से थे। ये राम के भक्त थे—इनकी भक्ति दास्य-भाव की हुई है। तुलसी संस्कृत के भी अच्छे पण्डित थे—रीति विषयों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था, इस लिये उनकी कविता में केवल कवित्व ही नहीं आचा—र्यत्व भी मिलता है।

इनके लिखे हुए १२ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिनमें ६ छोटे और ६ बड़े हैं। राम-चरित-मानस, गीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली और रामाज्ञा-प्रश्न बड़े है। जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, रामलला नहछू, वरवै रामायण, वैराग्य-संदीपिनी और श्रीकृष्ण-गीतावली छोटे हैं। वैसे राम-चरित-मानस ही से इनकी अधिक प्रसिद्ध हैं। राम-चरित-मानस तुलसी की अमर-रचना है। उत्तराखण्ड में ऐसा कौनसा शिक्षित सिन्दू घर है जिस में मानस की एक प्रति न मिले। हिंदी साहित्य में यही एक ऐसा ग्रंथ हैं जिसे हम संसार की अन्य जीवित भाषाओं के महाकाव्यों के सामने रख सकें। मृत हिंदू-जाति के अन्दर मानस ने अपना अमर-मन्त्र न फूंका होता तो आज उसका अस्तित्व असम्भव था, इसलिये हम कहते हैं कि तुलसी सन्त थे, महाकवि और आचार्य थे, साथ ही थें वे हिंदू-जाति के उद्धारकर्ता, महोपदेशक भी।

—०—

राम-भरत मिलाप

दोहा—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपा निकेतु ॥१॥

चौपाई

जौं न होत जग जनेम भरतको, सकल धरम मधुर धरनि धरतको
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा, को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा
लखन राम सिय सुनि सुरवानी, अति सुख लहेउ न जाइ बखानी
इहां भरत सब सहित सहाए, मंदाकिनी पुनीत नहाए
सरित समीत राखि सब लोगा, मांगि मातु गुरु सचिव नियोगा
चले भरत जहं सिय रघुराई, साथ निपादनाथ लघु भाई
समुझि मातु करतब सकुचाहीं, करत कुतरक कोटि मन माहीं
राम लखन सिय सुनि मन नाऊं, उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊं

दोहा—मातु मते महुं मानि मोहि जो कछु कहहिं सो थोर।
अब अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२॥

चौपाई—

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी, जौं सनमानहिं सेवक मानी।
मोरे सरन राम की पनहीं, राम सुस्वामी दोस सब जनहीं।
जग जस भाजन चातक मीना, नेम प्रेम निज निपुन नवीना।
अस मन गुनत चले मग जाता, सकुच सनेह सिथिल सब गाता।
फेरति मनहिं मातु कृत खोरी, चलत भगति बल धीरज धोरी।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ, तब पथ परत उताइल पाऊ।
भरत दसा तेहि अवसर कैसी, जल प्रवाह जल अलिगति जैसी।
देखि भरत कर सोच सनेहू, भा निषाद तेहि समय बिदेहू।

दोहा—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोच होइहि हरष पुनि परिनाम निषाद।

चौपाई—

सेवक बचन सत्य सब जाने, आस्रम निकट जाइ
भरत दीख वन सैल समाजू, मुदित छुधित जानु पाइ

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी, त्रिविध ताप पीडित ग्रह भारी।
जाइ सुराज सुदेश सुखारी, होइ भरत गति तेहि अनुहारी।
राम बास बन संपति भ्राजा, सुखी प्रजा जनु पाई सुराजा।
सचिव विराग विवेक नरेसू विपिन सुहावन पावन देसू।
भट जन नियम सैल रजधानी, सांति सुमति सुचि सुंदरि रानी।
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आस्रित चित चाऊ।
दोहा—जीति मोह महिपाल दल सहित विवेक भुआल।
करत अकण्टक राज पुर सुख संपदा सुकाल ॥४॥

चौपाई

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे. जनु पुर नगर गाउं गन खेरे।
विपुल विचित्र विहंग मृग नाना. प्रजा समाज न जाइ बखाना।
खगहा करि हरि बाघ बराहा, देखि महिप वृप साज सराहा।
बयरु बिहाय चराह एक संगा, जहं तहं मनहं सेन चतुरंगा।
झरना झरहिं मत्त गल गाजहि,मनहुं निसान विविध विधि बाजहिं।
चक चकोर चातक सुक पिकगन, कूजत मंजु मराल मुदित मन।
अलिगन गावत नाचत मोरा, जनु सुराज मंगल चहुं ओरा।
बेलि बिटप तृन सफल सफूला, सब समाज मुद मंगल मूला।
दोहा—रामसैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तपफल पाइ जिम सुखी सिराने नेम ॥५॥

चौपाई—

तब केवट ऊंचे चढ़ि धाई, कहेउ भरत सन भुजा उठाई।
नाथ देखि अहि बिटप विसाला, पाकरि जम्बु रसाल तमाला।
तिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा, मंजु बिसाल देखि मन मोहा।
नील सघन पल्लव फल लाला, अबिरल छांह सुखद सब काला।
मनहुं तिमिर अरुनमय रासी, बिरची बिधि सकेलि सुखमा सी।
तरु सरित समीप गसांई, रघुवर परनकुटी जहं छाई।

तुलसी तरुवर बिबिध सुहाए, कहुं कहुं सिय कहु लखन लगाए ।
बट छाया वेदिका बनाई, सिय निज पानि सरोज सुहाई ।
दोहा—जहां बैठि मुनिगन सहित नित सिय राम सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥६॥

चौपाई—

सखा वचन सुनि विटप निहारी, उमगे भरत बिलोचन वारी ।
करत प्रनाम चले दोउ भाई, कहत प्रीति सारद सकुचाई ।
हरषहिं निरखि राम पद अंका, मानहुं बारस पायेउ रंका ।
रज सिर धरि नयनन्ह लावहिं, रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ।
देखि भरत गति अकथ अतीवा, प्रेम मगन भृग खग जड जीवा ।
सखहि सनह बिबस मग भूला, कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ।
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे, सहज सनेह सराहन लागे ।
होत न भूतल भाउ भरको; अचर सचर चर अचर करत को ।
दोहा—प्रेम अमिअ मंदर विरह भरत पयोधि गंभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुवीर ॥७॥

चौपाई—

सखा समेत मनोहर जोटा; लखेउ न लखन सघन वन ओटा ।
भरत दीख प्रभु आस्रम पावन, सकल सुमंगल सदन सुहावन ।
करत प्रवेस मिटे दुख दावा, जनु जोगी परमारथ पावा ।
देखे भरत लखन प्रभु आगे, पूंछे वचन कहत अनुरागे ।
सीस जटा कटी मुनि पट वांधे, तून कसे कर सर धनु कांधे ।
वेदी पर मुनि साधु समाजू, सीय सहित राजत रघुराजू ।
बलकल बसन जटिल धुन स्यामा, जनु मुनिवेष कीन्ह रतिकामा ।
कर कमलनि धनु सायक फेरत, जिय की जरनि हरति हसि हेरत ।
दोहा—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचन्द ।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंद ॥८॥

चौपाई—

सानुज सखा समेत मगन मन, बिसरे हरष सोक सुख दुख गन।
पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं।
वचन सप्रेम लखन पहिचाने, करत प्रनाम भरत जिय जाने।
बधु सनेह सरस पहि ओरा, इत साहिब सेवा बस जोरा।
मिलि न जाय नहिं गुदरत्त बनई,सुकवि लखन मन की गति भनई।
रहे राखि सेवा पर भारू, चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।
कहत सप्रेम नाइ महि माथा, भरत प्रनाम करत रघुनाथा।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुं पट कहुं निपंग धनु तीरा।
दोहा—बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान ॥६॥

चौपाई—

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी, कविकुल अगम करम मन बानी।
परम प्रेम पूरन दोउ भाई, मन बुधि चित अहमिति बिलराई।
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई केहि छाया कबि मति अनुसरई।
कबिहिं अरथ आखर बल सांचा, अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा।
अगम सनेह भरत रघुवर को, जहं न जाइ मन विधि हरिहर को।
सो मैं कुमति कहउं केहि भांति, बाज सुराग कि गांडरतांती।
मिलनि बिलोकि भरत रघुवर की, सुरगन सभय धकधकी धरकी।
समुझाय सुरगुरु जड़ जागे, बरषि प्रसून प्रसंसन लागे।
(रामचरितमानस से)

राग ललित

खोटो खरो रावरो हौं, रावरो सौं,
रावरे सों झूठ क्यों कहोंगों ? जानौ सबही के मन की।
वचन हिये कहौं न कपट किये,

ऐसी हठ जैसी गांठि पानी परे सन की ॥
दूसरों भरोसो नाहिं, वासना उपासना को
वासव, विरंचि, सुर, नर, मुनिगन की।
स्वारथ के साथी, मेरे हाथ सों न लेवा देई,
काहू तो न पीर रघुबीर दीनजन की ॥
सांप सभा सावर लवार भए देव दिव्य,
दुसह सांसति कीजै आग दै यातन की ॥
सांसे परे पाऊं पान, पंचन पन प्रसान,
तुलसी-चाकत आस राम-स्याम -घन की ॥१॥
राम को गुलाम नाम नाम बोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुं कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखें, आगे हू को वेद भाषैं,
भलो ह्वैहै तेरो, तातें आनंद सहत हौं ॥
यो हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तो सांसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-कौसलपाल कृपाल,
लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित हौं ॥
बूझयों ज्यौंहीं, कह्यो मैं हूं चेरो ह्वैहै रावरो जू,
मेरो काऊ कहूं ताहिं, चरन गहत हौं।
मींजा गुरु पीठ अपनाइ गहि बांह बोलि,
सेवक-सुखद सदा विरद वहत हौ ॥
लोग कहैं पोच, सो सोचु न संकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी, जाति पांति न चहत हौं
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥२॥

राग जयतश्री

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो सुगम तो को अवर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ।
सुखसाधन हरि विमुख वृथा, जैसें श्रम-फल घृतहित मथे पाथ।
यह विचारी तजि कुपथ कुसंगति चलु सुपंथ मिलि भले साथ॥
देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि राम करि गान गाथ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ॥
तुलसीदास परिहरि प्रपंच सब नाउ रावपद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥३॥

राग धनाछरी

मन माधव को नेकु निहारहि।
सुनु, सथ-सदा रंक के धन ज्यों छनछन प्रभुहिं संभारहि॥
सोभासील ज्ञान-गुन-मन्दिर सुन्दर परम उदारहि।
रंजन-संत अखिल अघ गंजन भंजन विष विकारहि॥
जौं बिनु जोग यज्ञ व्रत संजम गयो चहहि भव पारहि।
तौ जनि तुलसीदास निसि बासर हरिपद-कमल बिसारहि॥४॥

मेरो मन हरि ! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ ! देउं सिख बहु विधि करत सुभाव निजै॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रमै गृहपसु ज्यौं जहं तहं सिर पदत्रान बजै।
हौं हारयो करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रबल अजै।
तुलसी दास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥५॥

जाउं कहां तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?

कौने देव बराय बिरद - हित हठि हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़ जमन कवन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-विवस विचारे।
तिन के हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।।६।।

(विनयपत्रिका से)

राग बिलावल

माता लै उछंग गोविंद मुख बार बार निरखै।

पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरखै।।
पूछत तोतरात बात मात हि जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहिं मोहिं कहु समुझाई।।
देखत तव बदन-कमल बन आनन्द होई।
कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई।।
सुन्दर मुख मोहिं दिखाउ, इच्छा अति मोरे।।
मम समान पुन्यपुंज बालक नहिं तोरे।।
तुलसी प्रभु प्रेमवस्य मनुज-रूप धारी।
बालकेलि लीलारस ब्रजजन-हितकारी ।।१।।

राग असावरी

तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करि यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे।।
गोरस-हानी सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजवास बसेरे।
दिन प्रति भाजन कौन वेसाहै ? घर निधि काहु के रे।
किए निहारो हंसत, खिझै तें डाटत नयन तरेरे।
अबहीं ते ये सिखे कहाधौं चरि। ललित सुत तेरे ।।

बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु बदन तन हेरे ।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजे सवेरे ॥२॥

मोकहं झूठेहु लगावहिं ।
मैया ! इन्हहिं बानि परगृह की नाना जुगुति बनावहिं ॥
इन्ह के लिये खेलिबो छांड्यौ तऊ न उबरन पावहिं ॥
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं ॥
कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं ॥
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझि हलधर को, संतत संग खेलावहिं ॥
जे अन्याउ करहिं काहू को ते सिसु मोहिं न भावहिं ॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हंसि हंसि बदन दुरावहिं ॥
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं ॥३॥

(श्री कृष्णगीतावली से)

कबीर

कबीरदास हिंदी के सर्व प्रथम रहस्यवादी कवि माने जाते हैं । इनका जन्म पुण्यधाम काशी में एक बाल विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से संवत् १४५६ में हुआ था। लोक लाज के भय से माता ने नवजात पुत्र को स्थानीय लहरतारा नाम के तालाब के निकट फेंक दिया। नीमा और नीरू नामक निस्संतान दंपति की दृष्टि इस शिशु पर पड़ी—उन्होंने उठा लिया। इसी दंपति द्वारा कबीर का लालन पालन हुआ। नीमा नीरू जाति के जुलाहे थे। इसीलिये कबीर को भी बड़ा होनेपर अपने पैतृक-व्यवसाय का आधार ग्रहण करना पड़ा।

बचपन से ही कबीर को हिंदू धर्म से अत्यंत प्रेम था।

छोटे पन में ही वे राम नाम का जाप किया करते थे। हिंदू धर्म के प्रति इस अगाध श्रद्धा ने ही उन्हें रामानंद का शिष्य बनने के लिए विवश किया। रामानंद का शिष्यत्व प्राप्त करने के अनन्तर कबीर उपदेश देने लगे। उनके उपदेश आडम्बर और दिखावे से सर्वथा रहित थे। इसलिए जनता पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग उनके शिष्य बनने लगे और कबीर के अपने जीवन-काल में उनके अपने नाम से एक नये मत का जन्म हुआ, उसका नाम था कबीर-पंथ। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके शिष्य थे।

कहने वाले कहते हैं कि 'कबीर का महत्व उनके काव्य के कारण नहीं अपितु एक उपदेशक अथवा संत की हैसियत से है।' कविता को यदि आत्मानुभूति माना जाए तो उपरोक्त कथन झूठा हो जाता है और कबीर के कवि होने में संदेह का कोई भी स्थान शेष नहीं रह जाता। हां, कबीर अक्षर-ज्ञान-शून्य थे—"मसि कगद छूया नहीं"। उन्होंने रीति ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया था। उन्हें तो केवल सुना सुनाया ज्ञान प्राप्त हुआ था, वही उन्होंने अपनी सीधी सादी भाषा में अपने शिष्यों के श्रवण-पुटों तक पहुँचा दिया—यही कारण है कि उन की कविता काव्य से खाली नहीं, फिर भी प्रसाद गुण, अलंकार-योजना और रसानुभूति आप को प्रत्येक स्थान पर मिलेगी।

कबीर निर्गुणोपासक थे—उन के भगवान सर्वव्यापक थे। निर्गुण भगवान में उन का कट्टर विश्वास था, इसीलिये उन्हों ने निर्गुणोपासना का प्रतिपादन करते समय मूर्तिपूजकों की आलोचना बुरी तरह से की है। उन्हें कुरूढ़ियों से जन्म-जात

बैर था चाहे वे हिंदुओं को हों चाहे मुसलमानों की। वे तो स्पष्ट-वक्ता थे और इसी सत्य का प्रचार प्रसार करना उन के जीवन का ध्येय अंत तक रहा।

कबीर ने एक साधु की कन्या से विवाह भी किया था। उस से उन्हें कमाल और कमाली नाम के दो बच्चे भी पैदा हुए।

अंत में कबीर काशी को छोड़ कर मगहर में मरने के लिये चल पड़े, वहीं उन की मृत्यु संवत् १५६५ में हुई। कबीर की कविताओं का संग्रह बीजक नाम से उन के शिष्यों ने किया है। इसी में उन के अमुल्य उपदेश हैं।

स्मरण

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे होय ॥ १॥
सुख में सुमिरन ना किया दुख में किया याद।
कह कबीर ता दास की कौन सुने फिरियाद ॥२॥
सुमिरन की सुधि यों करौ जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठों जाम ॥३॥
सुमिरन सों मन लाइये जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं प्रान तजे तेहि संग ॥४॥
सुमिरन सुरत लगाइ के मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के अन्तर के पट खोल ॥५॥
माला फेरत जुग गया फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ॥६॥
कबिरा माला मनहिं की और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं गले रहंट के देख ॥७॥
कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर।

माला स्वास उसास की जा में गांठ न मेर ॥८॥
सहजे ही धुन होत है हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥९॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥१०॥
तन थिर मन थिर बचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को कलप न पावैं कोय ॥११
जाप मरै अजपा मरै अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में ताहि काल नहिं खाय ॥१२॥
कबिरा छुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कर सुमिरन करो निसंग ॥१३॥
तूं तूं करता तूं भया मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूं तित तूं ॥१४॥

विनय

सुरति करौ मेरे सांइयां हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जांयगे जो नहिं पकरौ बाहिं ॥१॥
क्या मुख लै बिनती करौं लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करो कैसे भावौं तोहिं ॥२॥
मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्हार ॥३॥
अवगुण मेरे बाप जी बकस गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥४॥

औगुन किए तो बहु किए करत न मानी हार।
भावैं बंदा बखसिये भावैं गरदन मार ॥५॥
साहेब तुम जनि बीसरौ लाख लोग लगि जाहिं।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम सम हमरे नाहिं ॥६॥
अन्तरजामी एक तुम आतम के आधार।
जो तुम छोड़ौ हाथ तो कौन उतारै पार ॥७॥
मेरा मन जो तोहिं सों तेरा मन कहिं और।
कह कबीर कैसे निभै एक चित्त दुइ ठौर ॥८॥
मन परतीत न प्रेम रस ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से क्यों कर रहसी रंग ॥९॥
मेरा मुझ में कछु नहीं जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते का लागत है मोर ॥१०॥
तुम तो समरथ सांइयां दृढ़ करि पकरो बाहिं।
धुरही लै पहुंचाइयो जनि छांडों मग माहिं ॥११॥

सद्गुरु

सतगुरु सम को है सगा साधु सम को दात।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥१॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दिया बताय ॥२॥
बलिहरी गुरु आपने घड़ि घड़ि सौ सौ वार।
मानुष से देवता किया करत न लागी वार ॥३॥
सब धरती कागद करूं लेखन सब बनराय।
सात समुंद की मसि करूं गुरु गुन लिखा न जाय ॥
तन मन ताको दीजिये जाके विषया नाहिं।
आपा सबही डारि कै राखै साहेब माहिं ॥५॥

तन मन दिया तो क्या हुआ निज मन दिया न जाय ।
कह कबीर ता दास सो कैसे मन पतियाय ॥६॥
गुरु सिकलीगर कीजिये मनहिं मस्कला देइ ।
मन का मैल छुड़ाइ कै चित दरपन करि लेइ ॥७॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा साबुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइये निकसै जोति अपार ॥८॥
गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है गढ़ गढ़ काढै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट ॥९॥
कबीरा ते नर अन्ध हैं गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं गुरु रूठे नहीं ठौर ॥१०॥
गुरु हैं बड़े गोविन्द तें मन में देखु बिचार ।
हरि सुमिरै सो वार है गुरु सुमिरै सो पार ॥११॥
गुरु पारस गुरु परस हैं चन्दन वास सुवास ।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हा मुक्ति निवास ॥१२॥
पण्डित पढ़ गुन पचि मुए गुरुबिन मिले न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है सत्त सबद परमान ॥१३॥
तीन लोक नौ खण्ड में गुरुतें बड़ा न कोइ ।
करता करै न करि सकै गुरु करै सो होइ ॥१४॥
कबीरा हरि के रूठते गुरु के सरने जाइ ।
कह कबीर गुरु रूठते हरि नहीं होत सहाय॥ १५॥
वस्तु कहीं ढूंढै कहीं कहि विधि आवै हाथ ।
कह कबीर तब पाइये भेदी लीजे साथ ॥१६॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरु मिलें तौ भी सस्ता जान ॥१७॥
कोटिन चन्दा ऊगवें सूरज कोटि हजार ।

हस्ती चढ़िये ज्ञान की सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है भूंसन दे झख मारि ॥७॥
वाजन देहू जंतरी कलि कुकही मत छेड़ ।
तुझे पराई क्या परी अपनी आप निबेड़ ॥८॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक ॥९॥
गारी ही सों ऊपजै कलह कष्ट औ मीच ।
हारि चलै सो साधु है लागि मरै सो नीच ॥१०॥
जैसा अनजल खाइये तैसा ही मन होय ।
जैसा पानी पीजिये तैसी वानी सोय ॥११॥
मांगन मरन समान है मति कोउ मांगो भीख,
मांगन ते मरना भला यह सतगुर की सीख ॥१२॥
उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर ।
अधिकहिं संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥१३॥

कहते को कहि जान दे गुरु की सीख तू लेइ ।
साकट जन औ स्वान को फिरि जवाब मत देइ ॥१४॥
जो कोई समझै सैन मैं तासों कहिये बैन ।
सैन बैन समझै नहीं तासों कछू कहै न ॥१५॥
बहते को मत बहन दे कर गहि ऐंचहु ठौर ।
कहा सुना मानै नहीं बचन कहो दुइ और ॥१६॥
सकल दुरमती दूर करि आछो जनम बनाव ।
काग गमन गति छांडि दे हंस गमन गति आव ॥१७॥
मधुर बचन है औषधि कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ॥१८॥

बोलत ही पहिचानिये साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सबै निकसै मुख की बाट ॥१९॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये लिखि लिखि भये जो ईंट ।
कबिरा अन्तर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥२०॥
नाम भलो मन बसि करो यही ज्ञान है संत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान गरंथ ॥२१॥
करता था तो क्यों रहा अब करि क्यों पछिताय ।
बोवे पेड़ बबूल का आम कहां से खाय ॥२२॥
कबिरा दुनिया देहरे सीस नवावन जाय ।
हिरदे माहीं हरि बसैं तू ताही लौ लाय ॥२३॥
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा तामें जोति पिछान ॥२४॥
पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल ।
जब लगि पिउ परसै नहीं तब लग संसय मेल ॥२५॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न उतरिया मन दस लाये और ॥२६॥
न्हाये धोये क्या भया जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै धोये बास न जाय ॥२७॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय ॥२८॥
पढ़ै गुनै सीखै सुनै मिटी न संसय सूल ।
कह कबीर कासों कहूं येही दुख का मूल ॥२९॥
पंडित और मसालची दोनों सूझैं नाहिं ।
औरन को करै चांदन आप अंधेरे माहिं ॥३०॥
ऊंचे गांव पहाड़ पर औ मोटे की बांह ।
ऐसो ठाकुर सेइये उबरे जाकी छांह ॥३१॥

हे कबीर तैं उतरि रहु संबल परोहन साथ ।
संबल घटे औ पग थके जीव बिराने हाथ ॥३२॥
आपा तजौ औ हरि भजो नख सिख तजो विकार ।
सब जिउ ते निरवैर रहु साधु मता है सार ॥३३॥
बहु बंधन ते बांधिया एक बिचारा जीव ।
का बल छूटै आपने जो न छुड़ावै पीव ॥३४॥
समुझाये समझै नहीं परहथ आप बिकाय ।
मैं खैंचत हौं आप को चला सो जमपुर जाय ॥३५॥
वोहू तो वैसहि भया तू मति होव अयान ।
तू गुनवंत वे निरगुनी मति एकै में सान ॥३६॥
पूरा साहब सेइये सब बिधि पूरा होइ ।
ओछे नेह लगाइये मूलौ आवै खोइ ॥३७॥
पहिले बुरा कमाइ कै बांधी विष कै मोट ।
कोटि कर्म मिट पलक में आवै हरि की ओट ॥३८॥

सत्यता

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे सांच है ता हिरदे गुरु आप ॥१॥
सांई से सांचा रहौ सांई सांच सुहाय ।
भावै लम्बे केस रख भावै घोट मुंडाय ॥२॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाय ।
सांचे को सांचा मिलै सांचे मांहि समाय ॥३॥
सांच बिना सुमिरन नहीं भय बिन भक्ति न होय ।
पारस में परदा रहै कंचन केहि बिधि होय ॥४॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच ।
तन मन ता पर वारहूं जो कोइ बोलै सांच ॥५॥

सांचे कोइ न पतीजइ झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै मदिरा वैठिं विकाय ॥६॥
सांच कहूं तो मारिहैं झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी जो छेड़े तो खाय ॥७॥
सब ते सांचा है भला जो साचा दिल होइ।
सांच विना सुख नाहिं ना कोटि करै जो कोइ ॥८॥
सांचे सौदा कीजिये अपने मन में जानि।
सांचे हीरा पाइये झूठे मूरौ हानि ॥९॥

राम नाम महिमा

नाम अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै नाम अमल दिन वढै सवाई।
देखत चढ़ै सुनित हिय लागै सुरत किये तन देत घुमाई॥
पियत पियाला भये मतवाला पयो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनेका सदन कसाई॥
कह कबीर गूंगे गुड़ खाया विन रसना का करै बड़ाई।

कर्म गति

कर्म गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी॥
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपति परी।
कहं वह फंद कहां वह पारधि कहं वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगो रावन सुवरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द विकाने वलि पाताल धरी।
कोटि गया नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोन परी।
पाँडव जिन के आपु सारथी तिन पर विपत परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी हो के रही॥

हे कवीर तैं उतरि रहु संवल परोहन साथ ।
संबल घटे औ पग थके जीव विराने हाथ ॥३२॥
आपा तजो औ हरि भजो नख सिख तजो विकार ।
सब जिउ ते निरवैर रहु साधु मता है सार ॥३३॥
वहु बंधन ते बांधिया एक विचारा जीव ।
का वल छूटै आपने जो न छुड़ावै पीव ॥३४॥
समुझाये समझै नहीं परहथ आप विकाय ।
मैं खैंचत हौं आप को चला सो जमपुर जाय ॥३५॥
वोहू तो वैसहि भया तू मति होव अयान ।
तू गुनवंत वे निरगुनी मति एकै में सान ॥३६॥
पूरा साहव सेइये सव विधि पूरा होइ ।
ओछे नेह लगाइये मूलौ आवै खोइ ॥३७॥
पहिले बुरा कमाइ कै बांधी विप कै मोट ।
कोटि कर्म मिट पलक में आवै हरि की ओट ॥३८॥

सत्यता

सांच बराबर तप नहीं झूठ बरावर पाप ।
जाके हिरदे सांच है ता हिरदे गुरु आप ॥१॥
सांई से सांचा रहौ सांई सांच सुहाय ।
भावै लम्वे केस रख भावै घोट मुंडाय ॥२॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाय ।
सांचे को सांचा मिलै सांचे मांहि समाय ॥३॥
सांच विना सुमिरन नहीं भय बिन भक्ति न होय ।
पारस में परदा रहै कंचन केहि विधि होय ॥४॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कवीरा नाच ।
तन मन ता पर वारहूं जो कोइ वोलै सांच ॥५॥

सांचे कोइ न पतीजइ झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय ॥६॥
सांच कहूं तो मारिहैं झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी जो छेडै तो खाय ॥७॥
सब ते सांचा है भला जो साचा दिल होइ।
सांच बिना सुख नाहिं ना कोटि करै जो कोइ ॥८॥
सांचे सौदा कीजिये अपने मन में जानि।
सांचे हीरा पाइये झूठे मूरौ हानि ॥९॥

राम नाम महिमा

नाम अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै नाम अमल दिन बढै सवाई।
देखत चढ़ै सुनित हिय लागै सुरत किये तन देत घुमाई ॥
पियत पियाला भये मतवाला पयो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनेका सदन कसाई ॥
कह कबीर गूंगे गुड़ खाया बिन रसना का करै बड़ाई।

कर्म गति

कर्म गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ट से पंडित ज्ञानी सोध के लगन घरी ॥
सीता हरन मरन दसरथ को बन में विपति परी।
कह वह फंद कहां वह पारधि कहं वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगो रावन सुवरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गया नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोन परी।
पांडव जिन के आपु सारथी तिन पर विपत परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संजोग पर।
कहत कबीर सुनो भाई साधोहोनी हो के रही ॥

उपदेश और चेतावनी

चलत का टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।

दसो द्वार नरकै में बूड़े दुरगन्धों के बेढ़े ॥
फूटै नैन हृदय नहीं सूझै मति एको नहीं जानी ।
काम क्रोध तृष्णा के मारे बूड़ि मुये बिन पानी ॥
जारे देह भस्म है जाई गाड़े माटी खाई ।
सूकर स्वान काग के भोजन तन की यहै बड़ाई॥
चीत न देखु मुगुध नर बौरे तोते काल न दूरी ।
कोटिन जतन करै बहुतेरे तन की अवस्था धूरी ॥
बालू के घरवा में बैठे चेतत नाहिं अयाना ।
कह कबीर इक राम भजे बिन बूड़े बहुत सयाना॥१॥

नाम सुमिर पछतायगा ।

पापी जियरा लोभ करत हैं आज काल उठि जायगा ।
लालच लागी जनम गंवाया माया भरम भुलायगा
धन जोबन का गरब न कीजै कागद ज्यों गलि जायगा ॥
जब जम आइ केस गहि पटकौ ता दिन कछु न बसायगा
सुमिरिन भजन दया नहीं लीन्ही तो मुख चोटा खायगा ॥
धरम राय जब लेखा मांगै क्या मुख लेके जायगा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो साध संग तरि जायगा॥२॥

जाके नाम न आवत हिये ।

काह भये नर कासी बसे से का गंगा जल पिये ॥
काह भये नर जटा बढ़ाये का गुदरी के लिये ।
काह भयो कण्ठी के बांधे काह तिलक के दिये ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो नाहक ऐसे जिये ॥३॥

(कबीर बचनावली से)

सूरदास

सूरदास जी का जन्म सम्वत् १५४० में हुआ। जन्मस्थान मथुरा के निकट रेणुका-क्षेत्र नामक ग्राम माना जाता है। इन्होंने अपने किसी दुष्कर्म से क्षुब्ध होकर अपनी आंखें खो दी थीं। इन बाह्य-नेत्रों को खोने के उपरांत उन्हें दिव्य-चक्षु प्राप्त हुए। संसार की विषय-वासनाओं का स्थान भक्ति ने ले लिया और वे एक सन्त बन गए। वे सगुणोपासक थे और उनके उपास्यदेव थे ब्रज-विहारी वासुदेव श्रीकृष्ण। ब्रज-वासी सूर ने ब्रज-बिहारी कृष्ण के गुणों का बखान ब्रज भाषा में किया है। सूर कृष्ण के ऐसे भक्त नहीं जैसे तुलसी राम के। इनकी भक्ति सख्य भाव की है। भक्त होने के नाते वे अपने कृष्ण से याचना भी करते हैं और मित्रता के नाते उलाहना भी देते हैं।

सूर ने फुटकर पदों की रचना की है, जिनका संग्रह सूर-सागर नाम से प्रसिद्ध है। इनके रचे हुए सवा लाख पद बताए जाते हैं, किन्तु अभी तक पांच हजार ही उपलब्ध हुए हैं। सूरसागर के अतिरिक्त इनके ब्याहलो, नलदमयन्ती आदि और भी ग्रंथ कहे जाते हैं, किंतु इन में से मिलता कोई नहीं।

ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। अष्टछाप नामक ब्रज-भाषा के ८ प्रसिद्ध कवियों के मण्डल में इनका नाम सब से पूर्व लिया जाता है। इतना ही नहीं कोई तो इन्हें हिन्दी साहित्याकाश क का सर्वश्रेष्ठ कवि कहने में भी नहीं f

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसव दास।
अबके कवि खद्योतसम, जहं तहं करत प्रकास॥

अस्तु, जो भी हो इतना तो अवश्य मानना ही पड़ेगा कि सूर का स्थान हिंदी के महान् कवियों में है।

इनकी रचना में प्रसादगुण अलंकार योजना तथा रस-परिपाक स्थान २ पर मिलेगा। माधुर्य तो इनकी कविता में कूट २ कर भरा हुआ है।

सम्वत १६२० में इन्होंने परलोक-यात्रा की।

विनय-वाणी

चरन कमल वन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धरे को सब कछु दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार वन्दौं तिहि पाई॥१॥

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस, अन्तर्गत ही भावै।
परम स्वादु सब ही जु निरंतर, अमित तोष उपजावै।
मन वानी को अगम अगोचर, सो जाने जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगत विनु, निरालंब मन चक्रित धावै॥२॥

छांड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पय पान कराये, विष नहीं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मर्कट भूषन अङ्ग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरहि खहि छंग।

पाहन पतित बान नहिं बेंधत, रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग ॥२॥

मथुरा गमन

आजु वे चरन देखिहौं जाइ।
जे पद कमल प्रिया श्री उर से, नैक न सके भुलाइ॥
जे पद कमल सकल मुनि दुर्लभ, मैं देखौं सति भाव।
जे पद कमल पितामह ध्यावत, गावत नारद जाव॥
जे पद कमल सुरसरी परसे, तिहूं भुवन जस छाव।
सूर स्याम पद कमल परसिहौं, मन अति बढ़्यो उराव ॥१॥

जसोदा बारबार यों भाषै।
है ब्रज में कोऊ, हितू हमारे, चलत गोपालहिं राखै॥
कहा काज मेरे छगन मगन को, नृप मधुपुरी बुलायो।
सुफलक सुत मेरे प्रान हतन को, काल रूप ह्वै आयो॥
वरु ए गोधन हरौ कंस सब, मोहिं बन्दि लै मेलो।
इतनो ही सुख कमलनयन मेरी, अंखियन आगे खेलो॥
वासर वदन विलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊं।
तेहि बिछुरत जो जीवौं कर्मबस, तौ हंसि काहि बुलाऊं।
कमलनैन गुन टेरत टेरत, अधर वदन कुम्हिलानी।
सूर कहां लगि प्रगट जनाऊं, दुखित नन्द की रानी ॥२॥

कन्हैया मेरी छोह बिसारी।
क्यों बलराम कहत तू नाहीं, मैं तुम्हरी महतारी॥
तब हलधर जननी परबोधत, मिथ्या यह संसारी।
ज्यौं सावन की बेली प्रफुलिकै फूलति है दिन चारी॥
हम बालन तुम को कहा सिखवैं, कहूं तुमहिं ते जात।
सूरहृदय धीरज अब धारौ, काहे को बिलखात ॥३॥

यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।
कहा अक्रूर ठगोरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता॥
बिरध समय की हरत लकुटिया, पाप पुन्य डर नाहीं।
कछू नफा तुमको है यामे, सो सोधौ मन माहीं॥
नाम सुनत अक्रूर तुम्हारो, क्रूर भये हो आइ।
सूर नन्द धरनी अति व्याकुल, ऐसेहि रैन विहाय॥४॥
बिछुरे श्री ब्रजराज आजु इन नैनन तें परतीति गई।
उठि न गई हरि संग तबहि तें ह्वै न गई सखि स्याम मई॥
रूप रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
सांचे कूर कुटिल ए लोचन व्यथा मैन छवि छीनि लई॥
अब काहे जल मोचन सोचत, समौ गये तें सूल नई।
सूर दास याही तें जड़ भये, इन पलकन ही दगा दई॥५॥

पाछे ही चितवत मेरे लोचन आगे परत न पांइ।
मन लै चली माधुरी मूरति, कहा करो हौं जाइ॥
पवन न भई पताका अम्बर, भई न रथ के अंग।
धूरि न भई चरन लपटाती, जाती वहं लौं संग॥
ठाढ़ी कहा करौं मेरी सजनी, जिहि विधि मिलहिं गोपाल।
सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी, मुरझि परी ब्रजबाल॥६॥

सुदामा चरित

करि न सकति सकुचति इक बात।
कितिक दूरि द्वारका नगरी, काहे न द्विज जदुपति लौं जात।
जाके सखा स्यामसुन्दर से, श्रीपति सकल सुखन के दात।
उनके अछत आपने आलस, काहे कंत, रहत कृस गात॥

कहियत परम उदार कृपानिधि, अंतर्जामी त्रिभुवन तात ।
द्रवत आपु देत दासन को रीझत हैं तुलसी के पात ॥
छाड़ौ सकुच बांधि पट तंदुल, सूरज संग चलौ उठि प्रात !
लोचन सफल करौ प्रभु अपने, हरि मुख कमल देखि विलसात
दूरहिं तें देखे वलवीर । ॥१॥
अपने वाल सुसखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर ।
पौढ़े हुये प्रयंक परम रुचि, रुक्मिनि चमर डोलावत तीर ।
उठि अकुलाई अगमने लीने, मिलत नयन भरि आए नीर ॥
तेहि आसन वैठारि स्यामघन पूछा कुसल करो मन धीर ।
ल्याये हौ सु देहु किन हमको अव क्यों राखि दुरावत चीर ।
दरसन परम दृष्टि संभापन, रही न उर अन्तर कछु पीर ।
सूर सुमति तंदुल चवात ही, कर पकर्‌यो कमला भई भीर
ऐसी प्रीति की वलि जाउं । ॥२॥
सिंहासन तजि चले मिलन को, सुनत सुदामा नाउं ॥
गुरु वांधव अरु जानिकै, हाथनि चरण पखारे ।
अंकमाल दै कुसल वूझि कै अर्धासन वैठारे ॥
अर्धांगी वूझति मोहन सों, कैसे हितू तुम्हारे ।
दुर्वल दीन छीन देखती हौं, पाउं कहां तें धारे ॥
संदीपन के हम और सुदामा, पढ़े एक चटसार ।
सूर स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार ॥३॥
वह सुधि आवत मोंहि सुदामा ।
जव हम तुम वन गये लकरियन, पठये गुरु की भामा ।
चपल समीर भयो तेहि रजनी, भीजे चारौं जामा ।
कांपत हृदय वचन नहिं आवै, आए सत्वर धामा ॥
तवहिं असीस दई परसन ह्वै सफल होहु तुम कामा ।
सूरदास प्रभु को जु मिलन जस, गावत सुर नर ना

सुदामा मन्दिर देखि डर् यो ।

सीस धुनै दोऊ कर मींड़ै, अन्तर सांच पर् यो ॥
ठाढी त्रिया मारग जो जोवै, ऊंचे चरन धर् यो ॥
तोहि आदरयौ त्रिभुवन के नायक, अब क्यों जात फिर्यो ॥
इहां हुती मेरी राम मड़ैया, को नृप आनि छर्यो ॥
सूरदास प्रभु करि यह लीला, आपद विप्र हर्यो ॥५॥

कहो कैसे मिले स्याम संघाती ।
कैसे गये सु कंत कौन विधि परसे वस्त्र कुचील कुजाती ॥
सुर सुन्दरि प्रतिहार जनायो, हरि समीप रुक्मनी जहांती ।
उभै मुठी लीनों तंदुल की, संपति संचित करी ही थाती ॥
सूर सुदीनबन्धु करुनामय, करत बहुतजो श्री न रिसाती
ऐसे मोहिं और कौन पहिचनै । ॥६॥

सुन सुन्दरी, दीनबन्धु बिना कौन मिताई मानै ॥
कंह हम कृपन कुचींल कुदरसन, कहं वै जादवनाथ गुसाई ।
भैंटे हृदय लगाइ अंक भरी, उठि अग्रज की नाई ॥
निज आसन बैठारि परम रुचि, निज कर चरन पखारे ।
पूछी कुसल स्यामघन सुन्दर, सब संकोच निवारे ॥
लन्हैं छोरि चीर तें चाउर, कर गहि मुख में मेले ।
पूरब कथा सुनाई सूर प्रभु, गुरु गृह बसे अकेले ॥७॥
गोपाल बिना और मोहिं ऐसो कौन संभारै ।
हंसत हंसत हरि दौरि मिलै सुन, उर ते उर नहीं टारै ॥
छीन अंग जीरन वस्त्र, दीन मुख निहारै ।
मम तन पथ रज लागी, पीत पट सौं झारै ॥
सुखद सेज आसन दीन्हों, सु हाथ पाय पखारै ।

हरि हित हर गंग धरे, पद सिर ढारे॥
कहि गुरु गेह कथा सकल दुख निवारै।
न्याय निरख सूरदास, हरि पर सब वारै॥८॥

श्री राम-चरित

कर तल सोभति वान धनुहियां।
खेलत फिरत कनक मय आंगन, पहिरे लाल पनहियां॥
दसरथ कौसल्या के आगे, लसत सुमन की छहियां।
रघु कुल कुमद चंद चिंता मनि, प्रगटे भूतल महियां।
यहै देन आये रघु कुल को, आनन्द निधि सब गहियां॥
ये सुख तीन लोक में नाहीं, जो पाये प्रभु पहियां।
सूर दास हरि वोलि भगत को, निरवाहत गहि वहियां॥१॥
देखन को मन्दिर आनि चढ़ी।
रघुपति पूरन चंद विलोकत, मानो उदधि तरंग बढ़ी।
पिय दरस न प्यासी अति आतुर' निसि बासर गुन आन रढ़ी॥
तजि कुलकानि पीय मुख निरखति, सीस नाय आसीस पढ़ी।
भई देह जों खेह करसवस, ज्यों तट गङ्गा अनल दढ़ी।
सूरदास प्रभु दृष्टि सुधानिधि, मानो फेरि वनाइ गढ़ी॥२॥
रघुनाथ प्यारे आजु रहौ हो।
चारि जाम विस्राम हमारे' छिन छिन मीठे वचन कहौ हो।
वृथा होइ वर वचन हमारो, कैकयी जीव कलेस सहौ
आतुर है जब छांड़ि कुसल पुर, प्रान जीवन।
विछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु पुनि
अव सूरज दिन दरसन दुर्लभ, कलपि क:
नौका नहीं हों लें जाऊं।

प्रगट प्रताप चरन को देखौं, ताहि कहां लौं गाऊं ।
कृपा सिंधु पै केवट आयो कम्पत करत जु बात ।
चरन परसि पाखान उड़त है, मति मेरी उड़ि जात ।।
जो यह बधू होइमैं काहू की, दार स्वरूप धरे ।
छूटे देह जाइ सरिता तजि, पग सों परस करे ।।
मेरी सकल जीवका या में, रघुपति मुक्ति न कीजै ।
सूरज दास चढ़ौ प्रभु पाछे, रेनु पखारन दीजै ।।४।।

कहि धौं सखी बटोही कोहैं ।
अद्भुत बधू लिये संग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं ।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, विधि की रची न होई ।
काको अब उपमा यहि दीजै, देह धरे धौं कोई ।
इहि में को पति त्रिया तुम्हारो, पुरजन पूछैं धाई ।
राजिव-नैन मैन को मूरति, सैनन माहिं बताई ।।
गये सकल मिलि संगदूरि लौं, मन न फिरत पुरवास ।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेत उसास ।।५।।

बन्धू करि यों राज संभारे ।
राज नीति अरु गुरु की सेवा, गाई विप्र प्रतिपारे ।।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा, दरसन सांझ सकारे ।
गुरु वसिष्ठ अरु मिलि सुमन्त सौं, परजा हेतु विचारे ।।
भरत गात सीतल ह्वै आयो, नैन उमंगि जल धारे ।
सूरदास प्रभु दई पांवरी, अवधपुरी पग धारे ।।६।।

(संक्षिप्त सूरसागर से)

नरोत्तमदास

नरोत्तदास कस्बा बाड़ी ज़िला सीतापुर के रहने वाले थे । इन का जन्म सं० १५५० के लगभग माना जाता है ।

'शिवसिंह-सरोज' में सं० १६०२ में इनका जीवन वृत्त लिखा है।

इन्होंने सं० १५८२ में 'सुदामा-चरित्र' लिखा। इनके दो अन्य ग्रन्थों के नाम सुनने में आते हैं, अर्थात् 'ध्रुव चरित्र' और 'विचारमाला'। उन्होंने फुट कर कविताएं भी रचीं।

इनकी कविता बड़ी सुन्दर है। भाषा सरल, परिमार्जित और परिपक्व तथा गंभीर है। इनकी कविता भक्ति-रस से पूर्ण है। हिन्दी कवियों में इनका बहुत ऊँचा स्थान है।

'सुदामा-चरित्र' एक छोटा सा परन्तु बड़ा ही रोचक ग्रन्थ है, जो दोहे, घनाक्षरी और सवैया छंदों में लिखा है। इस खंड काव्य में सुदामा और कृष्ण की आदर्श मैत्री का वर्णन किया गया है। सुदामा की दरिद्रता, सहसा आने वाली संपत्ति उसके संतोष और उच्च विचार, तथा कृष्ण की उदारहृदयता और मित्रता का अनूठा चित्रण किया है। इस ग्रन्थ की रचना बड़ी सरस तथा मर्मस्पर्शिनी है और कवि की भावुकता का भली प्रकार परिचय कराती है।

सुदामा-कृष्ण भेंट

विप्र सुदामा बसत हैं, सदा आपने धाम।
भिक्षा करि भोजन करैं, हिये जपैं हरि नाम ॥१॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहै वेद की रीति।
सुलज, सुसील, सुबुद्धि अति पति सेवा में प्रीत ॥२॥
कही सुदामा एक दिन, कृस्न हमारे मित्र।
करत रहित उपदेस तिय, ऐसो परम विचित्र ॥३॥
महाराज जिनके हितू, हैं हरि यदु कुल चंद।
ते दारिद संताप ते, रहैं न क्यों निरद्वंद ॥४॥

कह्यो सुदामा बाम सुनु, वृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान का, धर्म सहित जप जोग ॥५॥

लोचन-कमल दुखमोचन तिलक भाल,
　　स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयंती माल,
　　संख चक्र गदा और पद्म धरे हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम संपीदन गुरु के पास,
　　तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरैंगे पिय,
　　द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥६॥

सिच्छक हौं सिगरे जग को,
　　तिय ताको कहा अब देती है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सुधारत,
　　संपति की तिनके नहीं इच्छा॥
मेरे हिये हरि के पद पंकज,
　　बार हजार लै देखु परिच्छा।
और कोउ धन चाहिये, बावरि ?
　　बांभन के धन केवल भिच्छा ॥७॥

दानी बड़े तिहुं लोकन में,
　　जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली विधि,
　　सिद्ध करो पिय मेरो मतौ लै।
दीनदयाल के द्वार न जात सो,
　　और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्रीजदुनाथ से जाके हितू सो,

तिहूँपन क्यों कन्न मांगत डोलै ॥८॥

छत्रिय के पन जुद्ध जुवा,
सजि बाजि चढ़ै गजराजन ही।
बैस के बानिज और कृसी पन,
सूद को सेवन साजन ही।
विप्रन के पन है जु यही,
सुख संपति को कुछ काज नहीं।
कै पढ़िवो कै तपोधन है,
कन्न मांगत बांभनै लाज नहीं ॥६॥

कोदों सवां जुरतो भरि पेट,
न चाहत हौं दधि-दूध मिठौती।
सीत वितीत भयो सिसियातहि,
हौं हठती पै तुम्हैं न पठौती।
जौ जनती न हितू हरि सों,

पूरन पैज करी प्रह्लाद की।
खंभ सों बांध्यो पिता जिहि बेरे।
द्रौपदी ध्यान धरयो जबहिं,
तबहिं पट कोटि लगे चहुँफेरे॥
ग्राह ते छूटि गयंद गयो पिय,
याहि सो है निहचय जिय मेरे।
ऐसे दरिद्र हज़ार हरैं वे,
कृपानिधि लोचन-कोर के हेरे॥१२॥

चक्कवै चौक रहे चकि से,
तहां भूले से भूप कितेक गिनाऊं।
देव गंधर्व औ किन्नर जच्छ से,
सांझ लौं ठाढ़े रहैं जिहि ठाऊं॥
ते दरबार विलोक्यों नहीं अब,
तोहि कहा कहिके समझाऊं।
रोकिये लोकन के मुखिया,
तहं हौं दुखिया किमि पैठन पाऊं॥१३॥

भूल से भूप अनेक खरे रहौ,
ठाढ़े रहौं तिमि चक्कवै भारी।
देव गंधर्व औ किन्नर जच्छ से,
मेलो करैं तिनकौ अधिकारी॥
अन्तरजामी वे आपुही जानिहैं,
मानौ यहै सिखि आछु हमारी।
द्वारकानाथ के द्वार गए,
सब ते पहिले सुधि लैहैं तिहारी॥१४॥

दीन दयाल को ऐसोई द्वार है,

दीनन की सुधि लेत सदाई ।
द्रौपदी तैं गज तैं प्रहलाद तैं,
जानि परी ना विलंब लगाई ॥
याही ते भावति मो मन दीनता,
जौ निवहै निवहै जस आई ।
जौ ब्रजराज सौं प्रीति नहीं,
केहि काज सुरेसहु की ठकुराई ॥१५॥
फाटे पट टूटी छानि खाय भीख मांगि मांगि,
बिना यज्ञ रहत विमुख देव पित्रई ।
वे हैं दीनबंधु दुखी देखि कै दयालु ह्वैहैं,
दैहैं कछु जौ सौ हौं तो जानत अगंतई ॥
द्वारिका लौं जाइ पिया एतौ अरसात तुम
काहे को लजात भई कौनसी विचित्रई ।
जो पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायौ तो पै
कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥१६॥
तैं तो कही नीकी सुनु बात हित ही की,
यही रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइये ।
चित्त के मिलेते चित्त धाइये परसपर,
मित्र के जौ जैइये तौ आपहू जैंवाये ॥
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहां यहि रूप जाइ कहा सकुचाइये ।
दुख सुख कै तौ दिन काटे ही बनैगे भूलि
बिपत परे पे द्वार मित्र के न जाइये ॥१७॥
विप्रन के भगत जगत के विदित बंधु,
लेत सब ही की सुधि ऐसे महा दानी हैं ।

पढ़े एक चटसार कही तुम कई बार,
लोचन अपार वै तुम्हैं न पहिचानि हैं ॥
एक दीनबंधु, कृपासिंधु केरि गुरुबंधु,
तुम सम दीन जाहि निज जिय जानिहैं।
नाम लेत चौगुनी, गये ते द्वार सौगुनी सो,
देखत सहस्रगुनी, प्रीति प्रभु मानिहैं ॥१८॥
प्रीति में चूक नहीं उन के हरि,
मो मिलि हैं उठि कंठ लगाय के।
द्वार गये कछु दैहैं पै दै हैं,
वे द्वारिका नाथ जू हैं सब लायकै॥
जो विधि वीति गये पनद्वै,
अब तो पहुँचो विरधापन आयकै।
जीवन शेष अहै दिन केतक,
होहुं हरी सों कनावड़ो जायकै ॥१६॥
हूजै कनावड़ो वार हजार लौ,
जौ हितू दीन दयालु सों पाइये।
तीनिहू लोक के ठाकुर जे,
तिन केदरबार न जात लजाइये ॥
मेरी कही जिय मैं धरि कै पिय,
भूलि न और प्रसंग चलाइये।
और के द्वार सों काज कहा पिय,
द्वारिका नाथ के द्वारे सिधाइये ॥२०॥
द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहुजू,
आठों जाम यही जक तेरे।
जौ न कहौ करिये तौ बड़ो दुख,

जैये कहां अपनी गति हेरे ॥
द्वार खड़े प्रभु के छरिया तहं,
भूपति जान न पावत नेरे ।
पांचु सुपारि तौ देखु बिचारि कै,
भेंट को चारि न चांवर मेरे ॥२१॥
दीठि चकचौंधि गई देखत सुवर्नमई,
एक ते आछे एक द्वारका के भौन हैं ।
पूछे बिनु कोऊ कहूं काहू सों न बात करै,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं ।
देखत सुदामा धाय पौरजन गहे पांय,
कृपा करि कहो विप्र कहां कीन्हो गौन हैं ।
धीरज अधीर के हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहा कौन है ॥२२॥
दीन जानि काहू पुरुस, कर गहि लीन्हों आय ।
दीन द्वार ठाढ़ो कियो, दीन दयाल के जाय ॥२३॥
द्वारपाल चलि तहं गयो, जहां कृस्न जदुराय ।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय ॥२४॥
सीस पगा न झगा तनमें,
प्रभु ! जाने को आहि बसे केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु,
पांय उपानह की नहिं सामा ।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक,
रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीन दयाल को धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा ॥२५॥

लोचन पूरी रहे जलसों,
प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेटयो ।
सोच भयो सुरनायक के,
कलपद्रुम के हिय माझ खसेत्यो ॥
कंप कुबेर हिये सरस्यो,
परसे पग जात सुमेरु समेटयो,
रंक ते राउ भयो तबहीं,
जबहीं भरि अङ्क रमापति भेट्यो ॥२६॥
भेंटि भली विधि विप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय ।
अन्त:पुर को लै गए; जहां न दूजो जाय ॥२७॥
जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप ।
पांय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप ॥२८॥
ऐसे बिहाल बिवाइन सों,
पग कंटक जाल लगे पुनि जोए ।
हाय महा दुख पायो सखा तुम,
आए इतै न कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दसा,
करुना करि कै करुना-निधि रोए ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये ॥२९॥
आगे चना गुरु मातु दए ते,
लए तुम चाबि हमें नहीं दीने ।
स्याम कह्यौ मुसुकाय सुदामा सौं,
चोरी की बान में हौ जू प्रबीने ॥
पोटरी कांख में चांपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने ।

पाछिली बानि अजौं न तजी तुम,
तैसई भाभी के तंदुल कीने ॥३०॥
खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुटि पर्‌यो, बिथिर गये तेहि ठौर ॥३१॥
(सुदामा-चरित्र से)

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखानां बैरमखां के पुत्र और अकबर के फुफेरे भाई मन्त्री तथा सेनापति थे। इनका जन्म सं० १६१० और मृत्यु सं० १६८४ में हुई थी। इन्होंने अकबर और जहांगीर के लिए कई युद्ध लड़े जिनमें आपने अद्भुत पराक्रम, वीरता, निर्भीकता, दानशीलता तथा उदारता का परिचय भली प्रकार दिया।

यह अरबी, फार्सी, संस्कृत तथा हिंदी के अच्छे विद्वान थे। इनके हिंदी में यों तो कई ग्रन्थ मिलते हैं, परन्तु अधिक ख्याति इनके दोहों की है।

इनकी कविता बड़ीही सरस, चटकीली तथा मनमोहिनी है। इन्होंने दोहा और बरवै छंदों का प्रयोग अच्छा किया है। केवल भाव की ओर इनका ध्यान अधिक रहता था—सीधे सादे शब्दों में सरल रूप से इन्हों ने उच्च शिक्षाओं और विचारपूर्ण तथा गम्भीर बातों का वर्णन किया है। स्थान २ पर दृष्टान्त, उपमा आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

इनकी रचनाएं नीति और शिक्षा से भरी हैं, जिनमें इन्हों ने अपना गूढ़ अनुभव प्रकट किया है। जो अनुभव इन्हें

लोचन पूरी रहे जलसों,
प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेटयो।
सोच भयो सुरनायक के,
कलपद्रुम के हिय माझ खसेट्यो॥
कंप कुबेर हिये सरस्यो,
परसे पग जात सुमेरु समेटयो,
रंक ते राउ भयो तबहीं,
जबहीं भरि अङ्क रमापति भेट्यो॥२६॥
भेंटि भली विधि विप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय।
अन्तःपुर को लै गए; जहां न दूजो जाय॥२७॥
जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप।
पांय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप॥२८॥
ऐसे बिहाल बिवाइन सों,
पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।
हाय महा दुख पायो सखा तुम,
आए इतै न किते दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा,
करुना करि कै करुना-निधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये॥२६॥
आगे चना गुरु मातु दए ते,
लए तुम चाबि हमें नहीं दीने।
स्याम कह्यौ मुसुकाय सुदामा सौं,
चोरी की बान में हौ जू प्रवीने॥
पोटरी कांख में चांपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने।

पाछिली वानि अजौं न तजी तुम,
तैसई भाभी के तंदुल कीने ॥३०॥
खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुटि पर्‌यो, बिथिर गये तेहि ठौर ॥३१॥
(सुदामा-चरित्र से)

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखानां बैरमखां के पुत्र और अकबर के फुफेरे भाई मन्त्री तथा सेनापति थे। इनका जन्म सं० १६१० और मृत्यु सं० १६८४ में हुई थी। इन्होंने अकबर और जहांगीर के लिए कई युद्ध लड़े जिनमें आपने अद्‌भुत पराक्रम, वीरता, निर्भीकता, दानशीलता तथा उदारता का परिचय भली प्रकार दिया।

यह अरबी, फार्सी, संस्कृत तथा हिंदी के अच्छे विद्वान थे। इनके हिंदी में यों तो कई ग्रन्थ मिलते हैं, परन्तु अधिक ख्याति इनके दोहों की है।

इनकी कविता बड़ीही सरस, चटकीली तथा मनमोहिनी है। इन्होंने दोहा और बरवै छंदों का प्रयोग अच्छा किया है। केवल भाव की ओर इनका ध्यान अधिक रहता था—सीधे सादे शब्दों में सरल रूप से इन्हों ने उच्च शिक्षाओं और विचारपूर्ण तथा गम्भीर बातों का वर्णन किया है। स्थान २ पर दृष्टान्त, उपमा आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

इनकी रचनाएं नीति और शिक्षा से भरी हैं, जिनमें इन्हों ने अपना गूढ़ अनुभव प्रकट किया है। जो अनुभव इन्हें

बतलाना होता था जो शिक्षा देनी होती, वह बड़ी प्रभावपूर्ण भाषा द्वारा प्रकट करते और साधारण उदाहरणों से ऐसा समझा देते कि सब हृदयंगम हो जाती ।

दोहे

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥१॥
अमरवेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥२॥
अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गांठ ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, नरस वांस की फांस ॥३॥
आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं ।
जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहिं ॥४॥
आपन काहू काम के, डार पात फल फूल ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल ॥५॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहिं अघाय ॥६॥
जे रहीम दर दर फिरहिं, मांगि मधुकरी खांहि ।
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं ॥७॥
ओछो काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होय ।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरधर कहे न कोय ॥८॥
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय ।
जिन आंखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥९॥
कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वांति एक गुन तीन ।
जैसी संगति बैठिये तैसोई फल दीन ॥१०॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर ।

मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर ॥११॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही सांचे मती ॥१२॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥१३॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उन के फाटत अङ्ग ॥१४॥
काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भंवरी के भए, नदी सिरावत मौर ॥१५॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥१६॥
कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर ॥१७॥
कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गए पछताय।
संपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाय ॥१८॥
कौन बड़ाई जलधि मिली, गंगा नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहि घटी, पर घर गए रहीम ॥१९॥
खीरा सिर तें काटिये, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय ॥२०॥
खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सगल जहान ॥२१॥
गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू, पर-घर जात लजाय ॥२२॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुं होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥२३॥

छिमा बड़न को चाहिये, छोटिन को उतपात ।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥२४॥

छोटिन सो सोहैं बड़े कहि रहीम यह रेख ।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरी की मेख ॥२५॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय ।२६॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥२७॥

जिहि अंचल दीपक दुर्यो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परै, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥२८॥

जो गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग ।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग ॥२९॥

जो रहीम बिधि बड़ किये, को कहि दूषन काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥३०॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥३१॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह ।
धरती ही पर परत हैं, सीत, घाम और मेह ॥३२॥

जो पुरुषा रथ ते कहूं, संपति मिलत रहीम ।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम ॥३३॥

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥३४॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥३५॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥३६॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अन्धेरा होय ॥३७॥
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तो कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥३८॥
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥३९॥
ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥४०॥
टूटे सुजन मनाईये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइये, टूटे मुक्ताहार ॥४१॥
तबहीं लौ जीवो भलो, दीवो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥४२॥
तरुवर फल नहि खात हैं सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति संचहिं सुजान ॥४३॥
थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम थहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥४४॥
थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहे न कोय ॥४५॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥४६॥
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥४७॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।

ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥४८॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूतल सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥४९॥
देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, जाते नीचे नैन ॥५०॥
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के मांहिं ॥५१॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥५२॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूँढत गजराज ॥५३॥
नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥५४॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥५५॥
निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ।
पांसे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ ॥५६॥
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥५७॥
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ॥५८॥
फरजी साह न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधी चाल सों, प्यादो होत वजीर ॥५९॥
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दांत द्वै काढ़ि ॥६०॥

बड़े बड़ाई ना करें, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥६१॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥६२॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥६३॥
भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥६४॥
मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥६५॥
मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥६६॥
मांगे घटत रहीम पद, कितो करौ बढ़ि काम।
तीन पैड़ बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥६७॥
मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेखि।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि ॥६८॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीत ॥६९॥
रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहै, तोसों को अनखाय ॥७०॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥७१॥
रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ ॥७२॥

रहिमन ओछे नरन सों, वैर भलो न प्रीत ।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भांति विपरीत ॥७३॥
रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥७४॥
रहिमन कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
रीते अनरीते करै, भरे विगारत दीठ ॥७५॥
रहिमन गली है सांकरी, दूजो न ठहराहि ।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥७६॥
रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देइ ।
छेद में डण्डा डारि के, चहै नांद लै लेइ ॥७७॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखी दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, वनत न लगिहै देर ॥७८॥
रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहीं काम ।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥७९॥
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय ।
सुनि अठलै हैं लोग सब, बांटि न लैहै कोय ॥८०॥
रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥८१॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहूं मांगन जाहिं ।
उन ते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥८२॥
सब को सब कोऊ करे, कै सलाम कै राम ।
हित रहिमन तब जानिये, जब कछु अटकै काम ॥८३॥
सरबर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥८४॥

दीन मीन बिन पंछ के कहु रहीम कहं जाहिं ।८५।
संपति भरम गंवाइकै, हाथ रहत कछु नाहिं ।
ज्यों रहीम ससि रहत हैं, दिवस अकासहिं माहिं ।८६।

पद

छवि आवत मोहन लाल की
काछे कछिन कलित मुरली कर, पीत पिछौरी साल की ॥
बङ्क तिलक केसर को कीने दुति मानों बिधु बाल की ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की ।
नीकी हंसनि अधर मधुरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की ।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुता माल की
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन-गोपाल की ।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की ॥१॥
कमलदल नैननि की उनमानि ।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि ॥
यह दसननि-दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता सुधापगी बतरानि ॥
चढ़ौ रहै चित उर बिसाल की मुक्तमाल-थहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥
अनु दिन श्रीवृन्दाबन ब्रज ते आवन आवन जानि ।
छवि रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥

(रहीम-रत्नावली)

केशवदास

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम काशीनाथ था। इन का जन्म ओड़छे में सं० १६११ के लग भग

हुआ। ओछड़ा–नरेश राम सिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह से इन्हों ने विशेष आदर पाया था। वीरबल ने इन के केवल एक छन्द को सुन कर ही इन्हें छः लाख रुपए पारितोषिक दिए। वीरबल ही के द्वारा इन्हों ने इन्द्रजीत सिंह पर अकबर से एक करोड़ का जुरमाना क्षमा कराया ।

यह संस्कृत के प्रौढ़ पंडित थे, और इसीलिए इन की भाषा प्रायः दुर्गम और जटिल होती है जिस के कारण इन को 'कठिन काव्य के प्रेत' भी कहा गया है।

'रामचन्द्रिका, कवि–प्रिया' 'रसिक–प्रिया' और 'विज्ञान–गीता' इन के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। कहा जाता है कि' रामचन्द्रिका' उन्हों ने तुलसी के कहने पर लिखी थी। इस महाकाव्य में राम की कथा का अश्वमेध पर्यंत वर्णन किय है। 'कवि–प्रिया में विशेषतः अलंकारों का और 'रसिक–प्रिया' में रसों का वर्णन है। इन ग्रंथों से कविता की अपेक्षा उन का पांडित्य अधिक टपकता है, इसी से कुछ लोग इन्हें कवि नहीं वरन आचार्य मानते है। वास्तव में वे आचार्य भी थे और कवि भी।

राम-परशुराम-संवाद

विश्वामित्र विदा भये जनक फिरे पहुंचाय ।
मिले आगली फौज को परशुराम अकुलाय ॥१॥
मत्त दंति अमत्त ह्वै गय देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुन्दभी नहीं बज्जहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय मज्जहीं।
काटि कै तन त्राण एक ही नारि भेषन सज्जहीं॥२॥

वामदेव ऋषि सों कह्यो, परशुराम रणवीर।
महादेव को धनुष यह, को तोर्‌यौ बलवीर ॥३॥

वामदेव—

महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।
तोर्‌यो 'रा' यह कहत ही समुझ्यौ रावनराज ॥४॥

परशुराम—

अति कोमल नृप सुतन की ग्रीवा दलीं अपार।
अब कठोर दशकंठ के काटहु कंठ कुठार ॥५॥
वर बान शिखीन अशेष समुद्रहि सोखि सखा सुखही तरिहौं
अरु लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कनकहि को भरिहौं॥
भल भुंजि कै राख सुखै करिकै दुख दीरघ देवन के हरिहौं।
सितकंठ के कंठहि को कंठुला दसकंठ के के कंठन को करिहौं ॥६॥

परसुराम—

यह कौन को दल देखिये ?

वामदेव—

यह राम को प्रभु लेखिये ?

परशुराम—

कहि कौन राम न जानियो ?

बामदेव—

सर ताड़का जिन मारियो ?

परशुराम—

ताड़का संहारी, तिय न विचारी, कौन बड़ाई ताहि हने।

वामदेव—

मारीच हुतो संग, प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।
बारि क्रतु रखवारो, गुरु सुखकारी, गौतम की तिय शुद्ध करी।

जिन हर-धनु खंड्यो, जग जस मंड्यो, सीय स्वयंबर मांझ वरी ।८।

परसुराम—

बोरों सबै रघुवंश कुठारकी धार में बारन बाजि सरत्थहिं ।
बान की वायु उड़ाय के लच्छ करों अरिहा समरत्थहिं ॥
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूंजौ भरत्थहिं ।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करों दसरत्थहिं ॥९॥

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै
गहे भरथ को हाथ, आवत राम बिलोकियो ॥१०॥

परसुराम—

अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास,
चन्द्रहूते चारु मुख सुषमाको ग्राम है ।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है ॥
बालक विलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।
वैर जिय मानि बामदेव को धनुष तोरो,
जानत हौं बीस बिसे राम भेस नाम है । ११ ।

भरत

कुसमुद्रिका समिधैं श्रुवा कुस औ कमंडल को लिये ।
कटिमूल श्रोननि तर्कसी भृगु लात सी दरसै हिये ॥
धनुबान तीख कुठार केसव मेखला मृगचर्म स्यों ।
रघुबीर को यह देखिये रस बीर सात्विक धर्म स्यों ॥ १२ ॥

राम

प्रचण्ड हैहयाधिराज दण्डमान जानिये ।
अखण्ड कीर्ति लेय भूमि देवयान मानिये ॥
अदेव देव जेय भीत रच्छमान लेखिये ।

अमेय तेज भर्ग भक्त भर्गवेश देखिये ॥१३॥

सह भरत लछिमन राम। चहुं किये आनि प्रणाम ॥
भृगुनन्द आसिष दीन। रन होहु अजय प्रवीन ॥१४॥

परशुराम-

सुनि रामचन्द्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार ॥

राम चन्द्र

भृगु वंश के अवतंस। मन वृत्ति है केहि अंस॥१५॥

परशुराम

तोरि सरासन सङ्कर को सुभ सिय स्वयंवर माझ बरी।
ता ते बढ्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न संक करी ॥

राम

सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुमही तो कहौ।

परशुराम

बाहु दै दोऊ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहौ।

राम

टूटै टूटनसार तरु बायुहिं दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष ॥
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई।
होन हार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई ॥
होन हार ह्वै रहै मोहमद सब को छूटै।
होय तिनूका वज्र बज्र तिनुका ह्वै टूटै॥१७॥

परशुराम

केशव हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाय लियौ रे।
ता लगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।

मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है वहु काल जियो रे।
तौ लौ नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को स्रोन सुधा न पियो रे

भरत ॥१८॥

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो, बड़पन रखिये, जा हित तूं सब जग जस पावै
चन्दन हू में, अति तन घसिये, आगि उठे यह गुनि सब लीजै
हैहय मारो, नृप जनसंहारे, सो जस ले किन जुग जीजै ॥१९॥

परशुराम

भली कही भरत्थ तैं उठाउ आगि अंगतें।
चढ़ाउ चोपि चाप आप वान लै निषंग तें॥
प्रभाउ आपनो दिखाउ छोंड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै॥२०॥

लियो चाप जब हाथ, तिनिहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्री रघु नाथ, तुम बालक जानत कहा ।२१।

राम

भगवंतन सो जीतिये कब हुं न कीन्हें शक्ति।
जीतिय एकै बात तें, केवल कीन्हें भक्ति॥२२॥
जब हत्यो हैहयराज इन बिन क्षत्र छिति मंडल करयो।
गिरि वेध षट मुख जीति तारक नन्द को जब ज्यों हरयो॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी।
वह रेनुका तिय धन्य धरनी में भई जग बन्दिनी॥२३॥

परशुराम

सुनि राम सील समुद्र। तव बन्धु है अति छुद्र।
मम बाडवानल कोप। अब कियो चाहत लोप॥२४॥

शत्रुघ्न—

हो भृगुनंद बली जग माहीं। राम [illegible] करिये घर जाहीं।
हौं तुमसों फिर युद्धहि मांड़ौं। क्षत्रिय वंशको वैर लै छाड़ौं ॥२५॥
यह बात सुनी भृगुनाथ जबै। कहि रामहिं लै घर जाहु अबै।
इनपै जग जीवन जो बचिहौं। रन हौं तुम सों फिरि कै रचिहौं ॥२६॥
निज अपराधी क्यों हतौं गुरु अपराधी छांडि।
ताते कठिन कुठार अब रामहि सों रन मांडि ॥२७॥

परशुधर—

भूतल के सब भूपन को मद भोजन तो बहुभांति कियोई।
मोद सों तारकनंद को मेद पछ्यावरि पान [illegible]यो हियो ई।
खीर षड़ानन को मद केशव सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कण्ठ को सोनित पान को चाहै कुठार पियोई ॥२८॥

लक्ष्मण—

जिनको सु अनुग्रह वृद्धि करै।
तिन को किमि निग्रह चित्त परै।
जिनके जग अच्छत सीस धरै।
तिन को तन सच्छत कौन करै ॥२९॥

राम—

कंठ कुठार परै अब हार कि फूलै असोक कि सोक समूरो।
कै चितसारि गढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो
लोक में लोक बड़ो अपलोक सु केशवदास जु होउ सु होउ
विप्रन के कुल को भृगुनंदन। सूर न सूरज के कुल कोऊ ॥३०॥

परशुराम—

हाथ धरे हथियार सवै तुम सोभत हो।
मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हौ॥
छत्रिय के कुल ह्वै कि[illegible]न न दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसहु मीचु वचौ॥३१॥

लक्ष्मण

क्षत्रिय ह्वै गुरु लोगन को प्रतिपाल करै।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरैं॥
तौ हमको गुरु दोष नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुम ही सुख पाय हती॥३२॥

परशुराम—

लछिमन के पु[illegible]षान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
वेष बनाय कियो वनितान को देखत केशव ह्यौ हरई॥
कूर कुठोर निहारि तजो फल ताको यहै जु हियो जरई।
आजु ते तो कहं बंधु महा धिक क्षत्रिन पै जु दया करई॥३३॥
तब एक वि[illegible] वेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड शोनित सों भरे पितु-तर्पणादि क्रिया सची॥
उबरे जु छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोध संहारिहौं।
अब वाल वृद्ध न ज्वान छांडहुं धर्म निर्दय पारिहौं॥३४॥

राम

भृगुकुल कमल दिनेश मुनि, जीति [illegible] संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ [illegible]-भार ॥३५॥

परशुराम—

राम सुबंधु संभारि, छोड़त सौं सब [illegible]।
देहु हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगि [illegible] ॥३६॥

राम—

सुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि।
तव विसिख अनेकन की जु अग्नि।
सब विसिख छांड़ि सहिहौं अखंड।

परशुराम

बान हमारेन के तनत्रान बिचारि बिचा[illegible] बिरंची करे हैं।
गोकुल ब्राह्मन नारि पुसंक जे जग दीन स्वभाव भरे हैं।
राम कहा करिहौ तिनका तुम बालक देव अदेव डरे है।
गाधि के नंद तिहारे गुरु जिनते ऋषि वेष किये उवरे हैं।३८।

राम—

भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं,
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरिहुं सेस सिर ते धर डारौं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहि सबही तम भारौ।
अति अमल जोति नारायनी कह केशव बुझि जाय वर।
भृगुनंद संभारु कुठारु मैं कियो सरासन जुक्त सर ॥३९।
रामराम जब कोप करयो जू। लोक लोक भय भूरि भ

नामदेव तब आपुन आये । रामदेव दोउन समझाये ॥४०॥

(रामचन्द्रिका से)

रसखान

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदुन वारिये ।'

(भारतेंदु)

रसखान दिल्ली के रहने वाले पठान सरदार थे । कोई २ इन्हें पिहानी-निवासी भी कहते हैं परन्तु वास्तव में ये दिल्ली के शाहिबंश में से थे । इनके जन्म काल का कोई निश्चय नहीं, हां स्वलिखित 'प्रम-वाटिका' में उन्होंने उसके रचने का काल—'विधु सागर रस इंदु' लिखा है, जिससे १६७१ विक्रमी संवत् निकलता है। इसी आधार पर इनका जन्म १७वीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है ।

आजतक इनके दो ग्रन्थ–'प्रेम वाटिका, और सुजान-रसखान प्राप्त हुए हैं । काव्य-रसिकों को दृष्टि में दूसरे ग्रन्थ ने बड़ा नाम पाया है । 'यथा नाम तथा गुणाः' के अनुसार वास्तविक रस की खान इनके काव्य भरी हुई है ।

रसिक रसखान संसार की वासनाओं से तिरस्कृत होकर इधर आए थे, इसीलिए उनमें मार्मिकता पद २ झलकती है। रस माधुर्य तो उनके यहां कूट ३ कर भरा है—उनके रसीले सवैयों का तो नाम भी उन्हीं के नाम पर रसखान पड़ गया था। इनका शृंगार इतना स्वच्छ तथा पवित्र है कि कहते ही बन पड़ता है । संसार से विरक्त होकर इनके वृन्दावन में आकर बसने के विषय में अनेकों किंवदंतियां प्रसिद्ध हैं ।

कहते हैं कि जब ये दिल्ली छोड़कर वृन्दावन में जाकर रहने लगे तो किन्हीं ने शाही दरबार में इनकी चुगली कर दी कि 'रसखान काफिर हो गये', तो इन्हों ने इस बात की तनिक भी पर्वाह न करते हुए कहा था—

कहा करे रसखान को, कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखन हार है माखन चाखनहार॥

ये निर्भय उसी प्रकार वृन्दावन में रहे और किसी की कुछ भी पर्वा न की।

मंगलाचरण

मोहन-छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥
बंक बिलोकनि हंसनि मुरि, मधुर बैन रससानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि॥
या छबि पै रसखानि अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं, पाई रहे सु खोज॥
मोहन सुन्दर स्याम को, देख्यो रूप अपार।
हिय जिय नैनिन मैं बस्यौ, वह ब्रजराज-कुमार॥

दोहे

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय॥१॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर रसिक बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नाहि रसखान॥२॥
प्रेम-बारुनी छानिकै, बरुन भए जलधीस।
प्रेमहि तें विष पान करि, पूजे जात गिरीस॥३॥
कमलतंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।

अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार ॥४॥
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किये उपाय ॥५॥
श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपजि हिय, प्रेम-बीज अंकुवार ॥६॥
ज्ञान, कर्म रु उपासना, सब अहमति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत, बिन, किये प्रेम अनुकूल ॥७॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मौलवी कुरान।
जुपै प्रेम जानियों नहीं, कहा कियो रसखान ॥८॥
काम क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे, कहत मुनिवर्य ॥६॥
बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जान।
सुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रस खानि ॥१०॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फांस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसांस ॥११
प्रेम हरी को रूप है, त्यं हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं ज्यों सूरज अरु धूप ॥१२॥
ज्ञान, ध्यान, बिद्या, मति, मत बिश्वास विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं अग जग एक अनेक ॥१३॥
जेहि पाए बैकुण्ठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक, शुद्ध, सुभ, सरस, सुप्रेम कहाहि ॥१४॥
कोऊ यहि फांसी कहत कोऊ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर कोउ—कहत अनोखी ढार ॥१५॥
हरि के सब आधीन है, पै हरी प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन ॥१६॥

कारज-कारन-रूप यह प्रेम अहै रसखान ।
कर्ता कर्म, क्रिया, करन, आपहि प्रेम बखान ॥१७॥
(प्रेमवाटिका से)

फुटकर

मानुष हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांवके ग्वारन
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मंझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन ।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंबकी डारन
या लकुटी या कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवो निधिको सुख नंद की गाय चराइ बिसारौं
रसखानि कबौं इन आंखिन सों ब्रजके बन बाग तड़ाग निहारौं
कोटि करौ कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं ॥२॥
धूर भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दरचोटी ।
खेलत खात फिरैं अङ्गना पग पैजनी बाजती पीरी कछोटी ॥
वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥३॥

दूध दुह्यो सीरो पर्यो तातो न जमायो कर्यो,
जामन दयो सो धरयो धरयोई खटाइगो ।
आन हाथ आन पाइ सबही के तबहीं ते,
जबहीं ते रसखानि तानन सुनाइगो ॥
ज्योंहीं नर त्योंही नारी तैसी ये तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो ।
जानिये न आली यह छोयरा जसोमति को,
बांसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥ ४ ॥
गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल,

आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री ।
तैसी धुनि बांसुरी की मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंदमंद मुसिकानि री,
कदम विटप के निकट तटनी के आय,
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री ।
रस बरसावै तन तपत बुझावै नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रस खानि री ॥५॥
ग्वालन संग जैबो वन ऐबो सुगायन संग,
हेरि ता न गैवो हाहा नैन फरकत हैं ।
ह्यां के गजमोती माल वारौं गुञ्जमालन पै,
कुञ्ज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोबर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ,
कहा भयो महल सोने को जटत मरकत हैं ।
मंदिर ते ऊंचे यह मंदिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं ॥६॥
कहा रसखानि सुखसंमति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच जल,
कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को ॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हज़ार अरे बूझत लबार को ।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त,
चाह्यो न निहारो जो पै नंद के कुमार को ॥७॥
कंचन के मंदिरनि दीठ ठहरात नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सौं ।

और प्रभुताई अब कहां लौं बखानौं प्रति-
हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं ॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद,
बीस बार गाय ध्यान कीजत सवारे सौं।
ऐसे ही भए ता नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीत पीतपटवारे सौं ॥८॥

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सोन निहारो
गौतम गेहिनी कैसी तरी प्रह्लाद को कैसे हरयो दुख भारो।
काहे को सोच करै रसखानि कहा करिहैं रविनंद विचारो।
ताखन जा खन राखिये माखन चाखनहारो सो 'राखनहारो ॥९॥

(सुजान-रसखान से)

गुरु गोविंदसिंह

गुरु गोविंदसिंह जी सिक्खों के परम प्रतापी दसवें तथा अन्तिम गुरु थे। इनका जन्म स० १७२३ में पटना में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेग बहादुर और माता का नाम गुजरी जी था इनका विवाह लाहौर के हरिवंश खत्री की पुत्री से हुआ।

इन्होंने पंजाब में हिंदू जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए खालसा नामक एक वीर जाति को उत्पन्न कर दिया। स्वयं बड़े मेधावी, देशकालज्ञ और रणनिपुण थे। विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन करने के लिये कई सिक्खों को काशी भेजा। स० १७६४ में आधी रात से सोते समय दो पठानों ने गोदावरी

आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री ।
तैसी धुनि बांसुरी की मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंदमंद मुसिकानि री,
कदम विटप के निकट तटनी के आय,
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री ।
रस बरसावे तन तपत बुझावे नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै रस खानि री ॥५॥
ग्वालन संग जैबो वन ऐबो सुगायन संग,
हेरि ता न गैबो हाहा नैन फरकत हैं ।
ह्यां के गजमोती माल वारौं गुञ्जमालन पै,
कुञ्ज सुधि आए हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोबर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ,
कहा भयो महल सोने को जटत मरकत हैं ।
मंदिर ते ऊंचे यह मंदिर हैं द्वारिका के,
व्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं ॥६॥
कहा रसखानि सुखसंमति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच जल,
कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को ॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हज़ार अरे बूझत लबार को ।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त,
चाह्यो न निहारो जो पै नंद के कुमार को ॥७॥
कंचन के मंदिरनि दीठ ठहरात नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सौं ।

और प्रभुताई अब कहां लौं बखानौं प्रति-
हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं ॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद,
बीस बार गाय ध्यान कीजत सवारे सौं।
ऐसे ही भए ता नर कहा रसखानि जो पै,
चित्त दै न कीनी प्रीत पीतपटवारे सौं ॥८॥

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिम सों कियो सोन निहारो
गौतम गेहिनी कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हरयो दुख भारो।
काहे को सोच करै रसखानि कहा करिहैं रविनंद विचारो।
ताखन जा खन राखिये माखन चाखनहारो सो 'राखनहारो ॥९॥

(सुजान-रसखान से)

गुरु गोबिंदसिंह

गुरु गोविंदसिंह जी सिक्खों के परम प्रतापी दसवें तथा अन्तिम गुरु थे। इनका जन्म स० १७२३ में पटना में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेग बहादुर और माता का नाम गुजरी जी था इनका विवाह लाहौर के हरिवंश खत्री की पुत्री से हुआ।

इन्होंने पंजाव में हिंदू जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए खालसा नामक एक वीर जाति को उत्पन्न कर दिया। स्वयं वड़े मेधावी, देशकालज्ञ और रणनिपुण थे। विद्वानों का वड़ा आदर करते थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन करने के लिये कई सिक्खों को काशी भेजा। स० १७६४ में आधी रात में सोते समय दो पठानों ने गोदावरी

के किनारे अविचल नाम नगर में इनके पेट में कटार भोंक दी।

संस्कृत और फारसी में इनको शौक था और हिन्दी में कविता किया करते थे। इन्होंने जापजी, सुनीतिप्रकाश, ज्ञानप्रबोध, प्रेम-सुमार्ग, [illegible] गार और दशम-ग्रन्थ के कुछ अंश की रचना की। इनके काव्य में वीर-रस का विशेष परिपाक हुआ है।

[illegible]

धन्य जियो तेहि को जग में [illegible] हरि चित्त में जुद्ध विचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै जस [illegible] चढै भव सागर तारै।
धीरज धाम बनाइ इहै तन [illegible] सु दीपक ज्यों उजियारै।
ज्ञानहि की बढ़नी मनो हाथ [illegible] कातरता कतवार वुहारै॥१॥
पाय गहे जबते तुमरे तब [illegible] कोउ आंखि तरे नहिं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान [illegible] क कहै हम एक न मान्यो॥
सिम्रिति सास्पर बेद सबै बहु भेद कहे हम एक न जान्यो।
स्री असिपानि कृपा तुमारी कर मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो॥२॥
जागत जोति जपै निस [illegible] एक बिना मत नेक न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीति सजै [illegible] गोर मढ़ी मठ भूल न मानै॥
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नहि एक पछानै।
पूरन जोति जगै घट में तब खालस ताहि निखालस जानै॥३॥
आदि अभेद अछेद सदा प्रभु वेद कतेबन भेद न पाये।
दीन दयालु कृपालु कृपानिधि सत्त सदैव सबै घट छाये॥
सेस, सुरेस, गनेस महेसर, गाह फिरे स्तुति थाह न पाये।
रे मन मंद अगूढ़ इसो प्रभु तैं केहि मूढ़ कहो बिसराये॥४॥
बेद कतेब न भेद लह्यो तेंऊ, सिद्ध समाधि सबै कर हारै।

सिम्रिति सास्तर वैद सवै बहु भांति पुरान विचार बिचारे।
आदि अनादि अगाध कथा, ध्रुव से प्रह्लाद अजामिल तारे।
नाम उचारि तरी गनिका सोइ नाम विचार अधार हमारे।५।
काहु लै ठोक बंधे उर ठाकुर काहू महेस को ऐसे बखान्यो।
काहु कह्यो हरिमन्दिर में हरि काहू मसीत के बीच प्रमान्यो।
काहु ने राम कह्यो कृश्ना कहि काहु भने अवतार न मान्यो।
फोकट धर्म बिसार सबै करतार हि को करता जिय जान्यो।।६।।
कोऊ दिजेस को मानत है और कोउ महेस की ईस बतै है।
कोउ कहै विसनों विश्नाय :: ज हि भजे अघओघ कटै है।
वार हजार विचार अरे जड़, अंत समय सब ही तज जैहै।
ताही को ध्यान प्रमान हिये जोउ था अब है अरु आगेहूहै है।७।
कोटिक इन्द्र करे छेहि के कई कोटि उपिंद्र बनाय खवायो।
दानव देव फुनिंद धराधर पच्छ पसू नहीं जात गनायो।
आज लगे तप साधत है सिवहू ब्रह्मा कछु पार न पायो।
वेद कतेव न भेद लख्यो जेहि सोउ गुरू गुर मोहि बतायो।८।
ध्यान लगाय ठग्यो सव लोगन स स जटा नख हाथ बढ़ाये।
लाय विभूत फिरयो मुख ऊपर देव अदेव सबै डहकाये।
लोभ के लागे फिरयो घर ही घर जोग के न्यास सबै बिसराये
लाज गई कछु काज सरयो नहि प्रेम विना प्रभु ध्यान न आये।९।।
काहे को डिंभ करै मन मूरख डिंभ करे अपनी पत खवै है
काहे को लोग ठगैं ठग लोगन लोक गयो परलोक गवै है।
दीन दयाल की ठौर जहां तिहिं ठौर विषै तोहि ठ र न ऐहै।
चेत रे चेत अचेत महा जड़भेष के कीन्हें अलेख न पैहै।१०।
काहे को पूजत पाहन को कछु पाहन में परमेसुर नहीं।

ताहि को पूज प्रभू करके जेहि पूजत ही अघ-ऊघ मिटाहीं ।
आधि बियाधि के बंधन जेतक नाम के लेत सबै खुटि जाहीं ।
ताही को ध्यान प्रमान सदा,यही फोटक धर्म करे फल नाहीं ॥११॥
फोटक धर्म भयौ फल हीन जु पूज सिला जुग कोटि गंवाई ।
सिद्धि कहां सिल के परसे वलवृद्धि घटी नव निद्धि न पाई ।
आजही आज समौ जु वित्यो नहिं काज सरया कछु लाज न आई ॥
श्री भगवंत भज्यो न अरे जड़ ऐसे ही ऐसे सु वैस गंवाई ॥१२॥
जो जुग तै करहै तपसा कछु तोहि प्रसन्न नपाहन कैहै ।
हाथ उठाउ भली विधि सों जड़ तोहे कछू वरदान न दैहै ।
कौन भरोसा भयो यहि को कहु भीर परी नहिं आन वचै है ।
जान रे जान अजान हठी यहि फोकट धर्म सु भर्म गवै है ॥१३॥
काल ही पाय भये ब्रह्मा गहि दंड कमंडल भूमि भ्रमान्यो ।
कालहि पाय सदा सिवजू सव देह विदेह भयौ हम जान्यो ।
काल हि पाय भयो मिट गयो जग याहिं ते ताहि सकै पहिचान्यो ।
बेद कतेब के भेद सवै तब केवल काल कृपा निधि मान्यो ॥१४॥
काल गयो इन कामन सों जड़ काल कृपाल हिये न चितारयो ।
लाज को छाड़ निलाज अरे तज काज अकाज के काज सवारयो ।
बाजि बड़े गजराज बड़े खर कोचढ़वो चित वीच विचारयो ।
श्री भगवंत भज्यो न अरे जड़ लाज ही लाज सों काज बिगारयो ।
बेद कतेव पढ़े वहुते दिन भेद कछू तिन को नहिं पायो ।
पूजत ठौर अनेक फिरयो पर एक कबै हिय में न वसायो
पाहन कोअस्थालय कोसिर न्यात फिरयो कछु हाथ न आयो
रे मन मूढ़ अगूढ़ प्रभु तज आपन हूढ़ कहां उरझायो ॥१६॥

कंस–वध

हरि कूद तबै रंग भूमहि ते नृप था सु जहां तहं पगु धारय

कंस लई कर ढाल संभार कै कोप भरयो असि खैंच निकारयो
दौर दई तिहु के तन पै हरि फांध गए अत दाव संभारयो ।
केसन ते गहि कै रिप कौ धरनी पर कै बल ताहि पछारयो ॥१७॥
गाहि केसन ते पटक्यो धर सों गाहि गोडन ते तब घीस दयो ।
नृप मार हुलास बढ़यो जिय में अति ही पुर भीतर सोर पयो ।
कवि स्याम प्रताप लखो हरि को जिन साधन राख कै सत्र छयी
कट बन्धन तात दिये मन के तब ही जग में जस बाहि लयो ॥१८॥

—०—

मीराबाई

मीरा जोधपुर के रतनसिंह की पुत्री थी । इनका जन्म प्राय: सं० १५५७ में माना जाता है, परन्तु इस विषय में अन्य मत भी हैं । इनका विवाह सं० १५७३ में उदयपुर के कुंवर भोजराज से हुआ । कुछ ही काल पश्चात् इनको वैधव्य-विपत्ति झेलनी पड़ी । विद्वानों का अनुमान है कि इनका गोलोकवास विक्रम की सत्रवीं शताब्दी के आदि में हुआ ।

मीरा कृष्ण की भक्ति में डूबी रहती थी । कहते हैं कि बचपन में एक सहेली का विवाह होते देखकर अपनी माता से उन्हों ने पूछा --कि मेरा वर कहां है ? योगवश माता ने एक मन्दिर की ओर संकेत करके कहा—कि तेरे पति इसी में हैं, बस उसी दिन मीरा भक्ति-भाव से भगवान की अर्चना-वंदन करने लगी । वैधव्यावस्था में तो यह भक्ति खूब बढ़ी और वे बिलकुल तल्लीन हो गईं ।

पति की मृत्यु के उपरान्त इनके देवर विक्रमाजीतसिंह ने इन्हें भक्ति से विलग करने के लिये नाना प्रकार के यत्न

किये। एक बार इनका विष का प्याला भेजा जो मीरा ने भगवत-चरणामृत समझ कर पी लिया और इन पर उसका कछ प्रभाव न हुआ। और भी बहुत कष्ट दिये। अन्त में ये चित्तौड़ छोड़ कर वृन्दावन चली गईं।

मीरा के पद भक्ति और प्रेम में पूर्णरूप से सने हुए हैं। इनके बनाए हुए तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—गीत गोविंद की टीका, नरसीजी का मायरा और राग- गोविंद। मींरा की भाषा में राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट हैं।

पद

राम मिलाण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियां।
दरसन बिन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आंगड़ियां।
तलफ तलफ़ के बहु दिन बीते, पड़ी विरह की फांसड़ियां॥
अब तो बेगि दया कर साहिब, मैं हूं तेरी दासड़ियां।
नैण दुखी दरसन को तिरसे, नाभि न बैठे सांसड़ियां।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियां॥
लगी लगन छूटण की नाहीं। अब क्यों कीजै आंटड़ियां।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, पूरौ मन की आसड़ियां॥१॥

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पाओ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जन्म जन्म की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥२॥

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरति सांवरि सूरति नैना बने विसाल॥

अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल ॥
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भक्त वछल गोपाल ॥३॥

करमगति टारे नाहिं टरे ।

सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे ।
पांच पांडु अरु कुंती द्रोपती, हाड़ हिमलय गरे ॥
जज्ञ किया बलि लैण इंद्रासन, सो पाताल धरे ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, विष से अमृत करे ॥४॥

मेरे तो गिरध गोपाल दूसरो न कोई ।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई ।

भाई छोड्या बंधु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ।
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ।
दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई ।
राणा विष का प्याला भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई ।
"मीरा" राम लगण लागी होणो होय सो होई ॥५॥

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥

सांप पिटारो राणा भेज्यो मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो गई अमर अंचाय ।
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय ।
साझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥

भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ॥६॥

नहिं ऐसो जनम बारंबार।

क्या जांनू कछु पुन्य प्रगटे, मानुस अवतार ॥
बढ़त पल पल घटत छिन छिन, चलत न लागे वार।
विरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहिं पुनि डार ॥
भौसागर अति जोर कहिये, विषय ओखी धार।
सुरत का नर बांध बेड़ा बेगि उतरे पार ॥
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार।
"दास मीरा" लाल गिरिधर, जीवना दिन चार ॥७॥

मन रे परसि हरि के चरन।

सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रहलाद परसे' इंद्र पदवी धरन ॥
जिन चरनन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखौ श्री भरन ॥
जिन चरनन प्रभु परसि लीने, तरी गौतम धरन।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन।
जिन चरन धारयो गोबर्द्ध, गरवा मघवा हरन।
"दासमीरा" लाल गिरिधर, अगम तारन तरन ॥८॥

स्याम ? मने चाकर राखो जी,
गिरधारी लाल चाकर राखो जी।

चाकर रहंसू, नित उठ दरसन पांसू।
बिंद्रावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला, गांसू॥
चाकारी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊं, तीनू बातां सरसी ॥

मोर मुकट पीतांबर सोहे, गल वैजन्ती माला ।
बिंद्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला ॥
हरे हरे नित बाग लगाऊं, बिच-बिच राखू क्यारी ।
सांवरिया के दरसण पाऊं, पहर कुसुम्भी सारी ।
जोगी आया जोग करणकूं, तप करणे संन्यासी ।
हरी भजनकूं साधू आया बिंद्रावन के बासी ॥
"मीरा" के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहो जी धीर ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हें, प्रेम नदी के तीर ॥९॥

भज मन चरन कमल अविनासी ।
जेताइ दीसे धरण गगन बीच, तेताइ सब उठ जासी ।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत फासी ॥
इण देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार पहरकी बाजी, सांज पड्यां उठ जासी ॥
कहा भयो है भगवा पहरयां, घर तज भये संन्यासी ।
जोगी होय जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करूं अबला कर जोड़े, स्याम तुम्हारी दासी ।
"मीरा" के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फांसी ॥१०॥

राम नाम रस पीजे, मनुआ राम नाम रस पीजे ।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित, हरिचर्चा सुन लीजे ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूं, चित्त से बहाय दीजे ।
'मीरा, के प्रभु गिरधर नागर, ताही के रंग में भींजे ॥११॥

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसन बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राणजी; कासूं जीवन होय ॥
ध्यान न भावे नींद न आवे; विरह सतावे मोय ।

घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरा दरद न जाणै कोय ॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैन गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरतां रे; नैन गमाई रोय ॥
जो मैं एसा जानती रे; प्रीत किये दुख होय ।
नगर ढंढोरा फेरती रे; प्रीत करो मत कोय ॥
पंथ निहारूं डगर बुहारूं; ऊवी मारग जोय ।
'मीरा के प्रभु कब रे मिलेंगे, तुम मिलियां सुख होय ॥१२॥

म्हारो जनम मरन को साथी,
थांने नही विसरूं दिन राती ।

तुम देख्यां विना कल न पड़त है जानत है मेरी छाती ।
ऊंची चढ़ चढ़ पंथ निहारूं रोय रोय अंखियां राती ॥
यो संसार सकल जग झूठो झूठा कुल रा नाती ।
दोउ कर जोड़्यां अरज करत हूं सुण लीज्यो मेरी वाती ॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी ज्यूं मद मातो हाथी ।
सत-गुर दस्त धर्यो सिर ऊपर आंकुस दे समझाती ॥
"मीरा" के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणां चित राती ।
पल पल तेरा रूप निहारूं निरख निरख सुख पाती ॥१३॥

स्वामी सब संसार के हो, सांचे श्री भगवान ॥
स्थावर जंगम पावक पाणी धरती बीच समान ॥
सब में महिमा तेरी देखी कुदरत के कुरबान ॥
सुदामा के दारिद खोंये बारे की पहिचान ।
दो मुट्ठी तंदुल की चाबी दीनी द्रव्य महान ॥
भारत में अर्जुन के आगे आप भये रथवान ॥
उनने अपने कुल को देखा छुट गये तीर कमान ॥
। कोई मारे ना कोई मरता तेरा यह अज्ञान ।

चेतन जीव तो अजर अमर है यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे बंदी अपनी जान।
'मीरा' गिरधर सरण तिहारी लगे चरण से ध्यान ॥१४॥

म्हांरी सुध ज्यू जानो त्यू लीजो जी।
पल पल भीतर पन्थ निहारूं,
दरसण म्हाने दीजो जी ॥
मैं तो हूं बहु औगुणहारी,
औगुण चित मत दीजो जी ॥
मैं तो दासी थांरे चरण जनां की,
मिल बिछुरन मत कीजे जी ॥
,मीरा' तो सतगुरु जी सरणे,
हरिचरणा चित दीजो जी ॥१५॥

हरि तुम हरो जनकी भीर।
द्रोपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर।
भगत कारन रूप नरहरि धरयो आप सरीर।
हरनकस्यप मार लीन्हों धर यो नाहिंन धीर ॥
बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
,दास मीरा लाल गिरधर दुख जहां तहं पीर ॥१६॥

वाजीद

वाजीद मुसलमान सन्त कवि थे जो विक्रम की १७ वीं शताब्दी में हुए माने जाते हैं। सम्भव है कि वे राजपूताने के रहने वाले थे क्यों कि उनकी कविता में जहां तहां राज-

स्थायी भापा के प्रयोग मिलते हैं। वे कबीर के अनुयायी प्रतीत होते है, यद्यपि उनकी वानी में कबीर का रहस्यवाद अधिक नहीं झलकाता। कई विद्वान् इनको दादू का चेला मानते हैं।

इनकी कविता उपदेश से भरपूर अत्यन्त रोचक तथा सरस है। इन्होंने अपनी कविता में विशेषत: चौपाई, दोहा, अरिल आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

अभी तक इनकी वानी प्रकाशित नहीं हुई। प्रस्तुत पाठ पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी लाहौर की एक हस्तलिखित प्रति पर से सम्पादित किया गया है।

गुन-घरिया-नामौं

चौपाई—

घरी खरी कहै सुनि लोई, मुझसी दुखी न कलि महि कोई।
मूलि सु मेरो नाव है माटी, किस ही सेती करौं न आटी ॥१॥
ममता मनकी मिट गई मूरि, हौं सब के पाइन की धूरि।
मेरौ सिर सब जग के पाई, जौ न पतीजहु देखहु आई ॥२॥
खूँद खलक न आऊ छेह, यौं सब के पाइन की खेह।
भली बुरी सब सिर पर झाली, वंचि कलप न इत उत हाली ॥३॥
एक द्यौस आयो सु कुलाल, धरम नीति की फोरी पाल।
बिना ही औगुन बिसवा बीस, आनि कुदाली मारी सीस ॥४॥
खोदि खोदि लै कीनी गंज़, नैंक न मानी मेरी रंज।
यातैं बिपति और नहिं कोई, एक सरीर किये लै दोई ॥५॥
लै जार घर के आंगना कूढ़ी, आनि कुमारी बैठी बूढ़ी।
दोऊ हाथ मोखरी लीनी, मूंड ही मूंड भरा भरि दीनी ॥६॥
ज्यों ज्यों मो महि आपौ जानैं, त्यों त्यों पकरि भली करि भानैं।
मारत मारत जब मनमानी, तब लै ऊपर छछक्यौ पानी ॥७॥

तिल इक तौ हौं भजन दीनी, तब लौं टहल और कछु कीनी ।
लागै पवन सूलि जिनि लाई, ढिग कुंभरा ठाढौ भयो आई ।८।
बांधि गरगदा खूंदन लाग्यो, मन कौ मोर सबायो भाग्यो ।
जिती एक वाकैं जिय भाई, तिती एक लातैं गनि गनि लाई ।६।
मारत सुख तैं चूख न बोली, पगि लगि रही न इत उत डोली
जांव कहां पाइन तर चोटी भली बुरी सब सिर पर वोटी ।१०।
भई विकल मति कहूं न भागी, विलखी है करि पाइन लागी ।
पाइ परौं त्यों त्यों मोहि गोड़े, आपौ सी कहुं वस्त न छोड़े ।११।
अजहुँ सु वाहर भींतर न्हालै, ढिग बैठौ गिलठा सब टालै ।
ज्यों ज्यों जिय मैं कसर विचारै, लैंदे सौं लोदों दै मारै ।१२।
ज्यों जाको त्यों मोरी तोरी, लौंदौं करिकै चाक चहोरी ।
चाक चहोरी चहूं दिस फेरी, सुधि बुधि सकल गई, सुनि मेरी
मोहि सु एकै दिसा न सूझै कहा करि है यह कउ न बूझै ।
तब तिहि घाट घरी कौ कीनौं, वाहरि भीतरि पानी दीनौं ।१४।
जब जानो यह सुघटन संवारी डोरौ लैकै काटि उतारी ।
गीली माटी हाथनि लीनी' थरी पहर लौं ठरकन दीनी ।१५।
पुनि ढिग बैठौ आनि कुंभार, इक माटी अरु मेलै छार ।
कर सु दाहिनैं थापी लीनी* मारत मन में सक न कीनी ।१६।
परतपि दुनिया देखत सारी, ज्यों ज्यों परि त्यों ही त्यां मारी
बाहरि भीतरि कसर न राखी, तब लौं घर के खूंनै नाखी ।१७।
दिन द्वै नाम न लीनो मेरौ पुनि कुंभरैं उठि कीनों केरौ ।
लै अहाव मैं दीनौ वास , उपरों लकरी डारयो घास ।१८।
आगै पीछै कोउ न वेली, लै कुंभरैं जौहर में मेली ।
परपक भई जब हि हौं जानी पकरि कैनारा वाहरि आनो ।१६

---

* हस्त लिख प्रति में पाठ 'थाली पीनी' है ।

जब हौं सहि निकसी सिर आगा, तब सो मोहि बेचन लागा ।
मन के मोर सवाये भागे, दह दिस तैं गाहक तब लागे ।२०।

साखी

जठर अग्नि में जब गहि मेली, जरतैं मुह न फेरा ।
नख सिख लौं जब साजी निकसी, तब गाहक टुक हेरा ।२१।
जो आवै सो पकरि बजावै, पूछै सारी फूटी ।
मुझ में मेरा कछु न छोड्यों रहीं सही तब लूटी ।२२ ।
मीर मलिक रावत कहा राजा, खालिक खोट न भावै ।
झूट नहीं यह साची जानहु, काची कामि न आवै ।२३।
जब हौं कछू काम की जानी तव सुगांठि तिहि खोली ।
खलक सबायो कौतुक देखै, गाहक लै गयो मोली ।२४ ।
बाहरि भीतरि मलि मल धोई, विच में मेली वासा ।
तब तिहि नांव धरी लै पाया, देखै लोग तमासा ।२५।
जन बाजीद कहै रे संतहु, विपत्ति सही जब ऐसी ।
हार हमेल सीस सेहुरा, चढ़ि तिगठी पर बैसी ।२६।
कहगी सहु के केसहु पहुँची, जब सिर सह्या सु आरा ।
दुख बिन सुख कबहु न पाईये, सुख दुख पैली बारा ।२७।
मूल फूल साखा सब छोड़ी, मैं तैं नैंक न भागी ।
महदी ह्वै सिल माहि पिसाई, पिय के पग तब लागी ।२८।
काजर देखि कब न तप किया' जरि भरि भया सु कारा ।
सखी सहेली सब मिली आई, तब नैंननि मैं सारा ।२९।

दोहा

तौ कठिन कसौटी पीय की सख जिनि जानहु कोई ।
पहले जहर जो जीरवै, अमृत पीवै सोई ।३०।

गुन-उतपति-नामौं

दोहा—सतगुरु के बंदौ चरन, करन मुकति जग जीव ।
जौ जन बिसरै एक पल, पुनि सुमिरावै पीव ।१।

चौपाई—तौ प्रथम लगौं सतगुरु के पाई, सीधा मारग दयो दिखाई।
राज पंथ रहित कौ मूल पहुंचे मजल न कोऊ भूल ।।२।।
कुस कंटक कोउ चुवै न पाव, सोनौ निसंक उछारत आव ।
कोस कोस पर बसती गांव, इंछा परै रहौ तिहि ठाव ।।३।।
प्रिय के पंथ जबहि उठि लाग्यो, जनम मरन संसौ जब भाग्यो।
उपज्हो भाव भगति जिय आई, दुरी बस्त सो परगट पाई ।।४।।
निरभै भयो न मानै संक, उदै भयो पूरबलो अंग ।
पाप-पुन्नि दोऊ अब पेले, सतगुर सुख सागर में मेले ।।५।।
भरम करम संसौ भय दूरि, प्रापति भई सजीवनि मूरि ।
पुनि सतगुर पै आइस पाऊं, लीला निराकार की गाऊं ।।६।।

दोहा—निराकार निरञ्जना, ना तिहि वार न पार ।
लीला मात्र कहन कौं, प्रगट कीयो संसार ।।७।

चौ०—तौं प्रथम प्रभू जिय ऐसी आनी,चरण कमल तैं काढ्यो पानी।
जा जल तें उपज्यो इक इंड, पुनि सो विरह कीयो द्वै खंड ।८।
तातैं धरणि गगन लै कीनां, पंच तत्त उपरि मन दीनां ।
इन तैं कारज कीने गाढे, पंच तत्त तिन मैं ते काढे ।।९।।
आप तेज प्रथी आकास, पंच तत्त मैं दीनों बास ।
पांचौ तत्त सकल के मूल, भवर वास कली कहा फूल ।।१०।।

अवरन वरन विरध कहा वारा, पंच तत्त लै कीन्ह पसारा।
विधनां चरित न केहू जानां, पवन पकरि पानी में साना।११।
दोहा—आप तेज आकास पिरथमी, पवन सुप्रेरनहार।
पंच तत्त करि एकठे, रच्या सकल संसार ॥१२॥

चौपाई—तौ जो दीसे सो हरि की माया, रज वीरज लै कीनी काया।
रुहिर मांस कौ गुटिका कीनौं, नर लै नरककुण्ड में दीनौं।१३।
नौ नारी, वहतरि कोठा, दसन रसन मुख दोनै होठा।
पांच मांस गये सांस संचारा, पीवन लग्यो अखंडित धारा।१४।
वीस पाख पीट मैं रह्यौ, भलौ वुरौ कछु सुन्यों न कह्यो।
इहि विधि बीति गए दस मास, हियो रुंधै न आवै स्वास।१५।
अरधैं सीस उरध कूं पाइ, कीनौ कैद न निकस्यो जाइ।
द्यौस न रैन छांह नहि धूप, जिय मैं जरयो परयो अंधकूप।१६।
हा हा हौं बलि बेर न लाई, त्राहि त्राहि मोहिं काढि गुसांई।
यह निज विपति निवारहू मेरी, गाऊंगौ कलि कीरति तेरी।१७।
बालपने तैं ह्वैहौं जती, साहिब सो न बिसरिहौं रती।
अब कै जीय दान दै मोहि, निस बासुर सुमिरोंगौं तोहि।१८।
दोहा—निस बासुर आठौं पहर, पलक न विसरौं तुझ।
अन्तरयामी जगतगुर, करि खालास अब मुझ।१९।
चौ०—तौ कौल बोल करि बाहिर आयो, लागत पवन खसम विसरायो
इहां इहां सु कह्यो वर दोई, गूंगे सैन न समझ्यो कोई।२०।
माया लगी ठौर वह भूल्यो, वालक भयो पीघुरै झूल्यो।
माता पिता के उपजो मोद, लयौ उछंगि आपनी गोद।२१।

दिष्टिमांझ तैं करैं न त्यारौ, मातहिं पितहिं पुत्र अति प्यारौ।
निसदिन रहैं प्रेम सौं पागे, हाथै हाथ खिलावन लागे।२२।
भयो सु पुष्ट पियो कछु खायो, आपै हुलसि घरनि कौ धायौ।
निरभै भयो भरम सब भाग्यो, घर आंगन में खेलन लाग्यो।२३।
उठि न सकै तो घुटरिन धावै, मन की लहरि न कोऊ पावै।
नैन्हौं निपट न समझै सुखमैं, भलौ बुरौ सब मेलै मुख में।२४।
ढांक्यो उघरयो नैंक न बूझै, जानपनौ सब राखै गूझै।
जो पै जननी होइ न साथ, दौरि अगनि मैं मेलै हाथ।२५।
खेरा खत्री मौंह मैं मूंछ, कारे नाग की पकरै पूंछ।
पलक पलक में पीवै खीर, जननी छिन जिय धरै न धीर।२६।
धाप्यो पाइ पसारै सोवै, भूखौ होई निमष में मैं रोवै।
दुखी सुखी हस्यो कहूं रोयो, बालपनौं सब इहि बिधि खोयो।२७।
दोहा—बालापन इहि विध गयो, जिहि विधि जाहू न कोइ।
सेवा संयम विधि बरत सुमिरन भजन न होइ।२८।
चौपाई—तौ तरुन भये चित उपज्यो चेत, जुवती सेती कीनौ हेत।
आशा तजै परि होइ न जूवा, नलनी मानहूँ बंध्यो सु सूवा।२९।
ज्यों ज्यों तन तरुनापौ चढै, त्यों त्यों काम कलपना बढै।
वहन विलोकत त्रिपति न होई, इहि विधि पुरुष भयो बसि जोई।३०।
नख सिख रोम रोम रस भीनौं, सरबस लै जुवती कौ दीनौं।
भयो निलज न मानैं संक, मेटि चल्यो विधिना के अंक।३१।
बतलायें तैं नैंक न बोलै, गलियारिन मैं ऐंग्नी डोलै।
टेढी पाग रकासै बांह, चलतौ फिर फिर देखै छांह।३२।

गारै अपनैं गनै न कोई, हम वड हम वड हम वड लोई।
सुत दारा मेरो धन धाम, छूटि न सकै पियो वस काम ॥३३॥
अरथ दरवि कौं लाग्यौ सेवा, पूजि न सक्यो निरंजन देवा।
मूरख मन माया लै दीनौं, हरिनागर सौं हेत न कीनौं ॥३४॥
विषै विकार वहुत रुचि मानी, अवगति की गति एक न जानी।
बहुत २ करि दस दिसि धायो, जो कछु लिख्यो सोई परिपायो ॥३५॥
परमारथ कोउ एक न सारयो, स्वारथ लगि जीत्यो कहुं हारयों।
ज्यों मन कह्यो त्योंहि त्यों खेल्यो, तरुनापौ हू इहि विधि पैल्यौ ।३६।
दोहा—तरुनापैं भयो अंधरा सक्यो न वस्त पिछानि।
सोवत ही सव निस गई जरा विलम्वी आनि ॥३७॥
चौपाई—तौ सोवत भयो स्याम तैं सेत, अजहूँ न उपजत हरिसौ हेत
केस भेस बदले मुख बानी नैन सु आवन लाग्यो पानी ॥३८॥
पति सु पंच लोग मैं गई, सकल अवंग्या औरै भई।
संध बंध सकल भये ढीले, मानहुं रहे भवंगम कीले ॥३९॥
अन्न न रुचै भूखहू भागी, जोवन कहा जरा जव लागी।
जोबन गयो जरा जव झंप्यौ, श्रवन न सुनैं सीस कर कंप्यौ ॥४०॥
जुर आये जोबन गयो दूर, नैननि कौ हरि लीनौं नूर।
जब इहि जोवनि दीनी पीठि, मग अमग न सूझै दीठि ।४१।
पलकनि के लागे दोउ पाट, जैसौ औघट तैसो वाट।
जोबन रतन हाथ तैं खोयो, विरध भयो नर निहचै रोयो ।४२।
मिटयौं मुटापौ बदली बानी, जब यह जोबन दे गयौ कानी।
कमरि गरगदा लकुटी हाथ, डग डग डोलन लागा माथ ॥४३॥

पाइ अटपटे कर दोऊ कंपै, लोक कुटुम्बी छांह न चंपै ।
लोग कुटंबनि तोरयो तागा, मन का मोर सवाया भागा ।४४
कौन बिपति यह दीनी सांई, संगी सकल चले दै बांई ।
बिरध भयो तब छोड़ी आसा, बारौरी मैं दीनौं बासा ।।४५।।
घर के काज करत सब डोलैं, बतलायें ते नेक न बोलैं ।
याकी बुधि तौ विधना हरी, बकतौ रहै न एकै घरी ।।४६।।
सब मिलि सतरयो राख्यो नाव, ढिग सु न बैसहि लागै पाव ।
परजन्न सजन कहै बंध भाई, मांचातोरं सु मरिहु न जाई ।४७।
पंचनि मैं तैं परया बजूबा, निहचै नर सु एक दिन मूवा ।
जहि कुटंब अपनौं करि पारयौ, मूंड ठोकि बाहरि लै जारयो ।।४८।।
राखहु ऊपर दीनैं भाठे, प्रेत प्रेत कर संगी नाठे ।
तू मेरौ कछू न हौं तेरो कोई, जन बाजीद बडउवा दोई ।।४९।।
दोहा—यह तेरी उतपति प्रलै, मैं सु लखाया भेव ।
जब लग सांस सरीर मैं, तब लग करि हरि सेव ।५०।

———

कठिनशब्द-कोश

नोट—कोश में शब्दों की पृष्ठ-संख्या प्रथम संस्करण के अनुसार है।

पृष्ठ

२. रष्षस = राक्षस। अत्थि = है, था। भर = सारा, बड़ा। कत्थ = कथा। निर्मये = बनाता हूं। कित्ति = कीर्ति, यश ॥१॥ जग्गि = यज्ञ में। थानयं = स्थान। उच्चिष्ट = अपवित्र ॥२॥ अनसंकि = शंका रहित ॥३॥ संजिये = कीजिये। संवहै = युद्ध होवे। निर्मोस = अमावास्या-रहित ॥४॥ जच्चे = मांगे॥५॥

३. अप्पै = देवे। चमंके = चौंक कर। कीउ = किया ॥६॥ सम्पत्तौ = पहुंचा। दिद्ध = दिया ॥७॥ जत्तत = जहां तहां ॥८॥ क्रमयौं = चला। पूठि = पीछे ॥९॥ ठड्ढो = खड़ा हुआ। तांम = तब ॥१०॥ गुरुवामं = गुरु-पत्नी को ॥११॥ करार = कराल भयंकर।१२। वाचिष्ट = वसिष्ठ। सिवपुरह = काशी। व्रण्ण = वर्णों को ॥१३॥ भ्रम्मेव = भ्रमण करने लगी। मुंछेव = मूर्छा खाकर ॥१५॥

४. वच्च = वत्स। सुर = स्वर ॥१७॥ संपुजै = पहुंचता है। क्रम्म = कर्म ॥२५॥

५. रढिआय = रट कर ॥२६॥

६. अषि = अक्षय ३३४॥ अष्षहि = कहते हैं। जाजन = यज्ञ ॥१४॥

७. जज्जित = जर्जर ॥३७॥ वंटै = बांटे ॥४०॥ भेदय... = "सब शरीर में चक्र मिट्टी उदयी लग गई" ॥४३॥

९. नंषे = डाले ॥४८॥ निय = निज। वच विसरीर = आकाश-वाणी अर्थात शरीर रहित वचन ॥४९॥

१२. हुरम = अंतःपुर ॥१॥

१३. विब्रर २ = खुल करा॥५॥ सुभाय = दिखलाई देता है॥८॥

१४. जूप = जोड़ करा॥१६॥

१५. चाय = उठ गया ॥२२॥ चक्क = चक्र, दिशाएं ॥२३॥ वंकी = सुंदर ॥२६॥ बिछायति = बिछौना । वेस = (फा० बेश) बढ़िया ॥२८॥

१६. पहं = पास ॥३२॥

१७. हल्लियं = हिले ॥३७॥ सुच्छियं = खड़े हो गये ॥४०॥

१८. गायव = गया ॥४६॥

२२. बरनक = वर्णन । सरि = समता॥१॥ घोरसारा = घुड़साल । तुखारा = घोड़े । कबिलास = कैलाश । असु-पति = अश्वपति ॥२॥ निरावा = समीप । अंबराउ = आम्रराज ॥३॥

२३. डीठी = देखी, दीख पड़ी ॥४॥

२४. सेवरा = जैन—भिक्षु ॥६॥ गरेरी = घूमने वाली ॥७॥

२५. दिपाहीं = चमकते हैं। अच्छरी = अप्सरा ॥८॥

२६. पोते = पुते हुए। दिसिटि = दृष्टि ॥१२

२९. छमि = क्षमा कर के ॥२॥परिहरहिं = त्यागते हैं। सनमानहिं = सम्मान करते हैं। खोरी = दुष्टता ॥३॥

सुनाजू = अच्छा अन्न॥४॥ वनेरे = बहुत से । करि = हाथी ! वयरु = वैर ।

३१. निसान = निगाड़ा ॥५॥ देखिअहि = देखिये ॥६॥

३३. चङ्ग = पतंग, कनकौआ । निपंग = तरकस । अपान = अपनापन अपनी सुध ॥६॥ आखर = अक्षर । गाडरतांती = ऊन की तांत ।

३४. सौं = शपथ, सौगंद ॥१॥

४२. अनहद = अन्तःस्वर ॥२॥ भावैं = चाहे, जैसा चाहो ॥५॥
४३. रहसी = रहेगा ॥८॥ जनि=मत ॥१॥ गोविंद ईश्वर ॥२॥
४४. मस्कला = परिमार्जन ॥७॥
४५. साकट = शाक्त ॥७॥
४७. पैठ=बाजार ॥४॥ मीच = मृत्यु ॥१०
४६. परसैं=छूता है ॥छूते हैं ॥२५॥ बास = गंध ॥२७॥ सेइये = सेवन कीजे ॥३१॥ संवल = रास्ते की भोजन आदि सामग्री ॥३२॥
५२. बूड़ि=डूब कर ॥१॥
५७. कहा काज = किस लिए ॥२॥
५८. ठगोरी ठगबाजी । घरनी = पत्नी ॥४॥
६५. निरद्वंद्व = बेफिक्र ॥४॥ सिगरे = सकल सिच्छक = शिक्षक
६६. बावरि = पगली ॥७॥ जुवा = द्यूत ॥६॥
६७. कोदों सवां = एक प्रकार का सस्ता अन्न । पठौंती=भेजती ॥ कठौती = लकड़ी का बरतन॥१०॥ लढ़ाभरि = गाड़ी भर कर अटारी अटा = कोठे तथा अट्टालिका ॥११॥ पैज= प्रतिज्ञा॥१२
६८. चक्कवै = चक्रवर्ती ॥१३॥
७२ कहा गौन = कहां चले ॥२२
७४. बानी = आदत॥३०॥
७६ रिस = क्रोध गांस + गांठ ॥३॥ आघाय = पूर्ण रीती से ॥६३
७८. गुन=रस्सा ॥२३॥ बापुरो = गरीब ॥२६॥
८०. घूर = कूड़े का ढेर ॥४८॥ मड़ही = छोटा गढ़ा ॥५४॥
८१. हहरिकै = गिड़गिड़ा कर ॥६८
८२. कच्चन = केश, बाल ॥६८॥
८३. दमामो = धौंसा, नगाड़ा ॥७६॥ गोय = छुपा कर ॥८०॥

८६. सूरन=शूरों के पुत्र । तनत्राण=कवच ।।२।। बाण शिखीन= अग्नि-बाणों से । औट=पिघला कर । कंठुला=माला ।।६।।

८७. वारन = हाथी । लच्छ=लक्ष्य, निशाना । अरिहा=शत्रुघ्न ।६।

८६. मेद=चरबी । सिरानो=ठंडा हुआ ।।१८।।

६०. बालभाइ=बालभाव ।।२०।।

६१. सच्छत=घावयुक्त ।।२६।।

६३. भवधनुष=महादेव का धनुष ।।३६।।

६६ बारुनी=शराब ।।३।।

६८. सीरो=ठंडा ।। ।।

१०२. गोर=कब्र= । कतेबन=किताबें अर्थात् कुरान और बाइबल ।।४।।

१०३. अघओघ= पापों का समूह ।।७।। पच्छ=पक्षी ।।८।। ठहकाये=धोखा दिया ।।६।।

१०५. असथालय=कब्र । हूढ़=मूढ़, मूर्ख ।।१६।। छयो=क्षय ।।१८।।

१०७. बाटड़ियां=मार्ग । 'ड़' राजस्थाकी भाषा में एक प्रत्यय है ।१।

११०. चाकर=सेवक । रहसूं=रहूंगी ।।६।। जासी=जायगा ।।१०।।

१११. कल=चैन ।।१३।।

११५. घरी=घड़ा । मूलि=मूल । झाटी=झगड़ा ।।१।। न पतीजहु= यकीन नहीं होता ।।२।। खूंदै रौंदते हैं । छेह=अन्त । बंचि कलप न=जरा न बची ।।३।। पाल=पंक्ति, मर्यादा ।।४।। कूढि=ढेर लगाया ।।६।। आपौ=अपनत्व । भानैं=तोड़ता है । छछक्यो=डाला ।।७।। टहल=सेवा ।।८।। चूख=तनिक भी । बोटी=सही ।।१०।।

११६. गिलठा टालना=कंकड़ियां दूर करना । लौंदा=मिट्टी का

तोदा ॥१२॥ चाक चढ़ोरी=चक्र पर चढ़ाया ॥१३॥ घाट= बनावट ॥१४॥ ठरकन=सूखना ॥१५॥ छार=राख ॥१६॥ परतपि=प्रत्त्व । खूंने नाखो=कोने में रखा ॥१७॥ करो= ध्यान । अहाव=अवा ॥१८॥ वेली=साथी ।जौंहार= आग ॥१६॥

११७. टुक=जरा ॥२१। खलिक=ईश्वर ।२३। विपति=विपत्ति। तिगठी=तिपाई । वैसी=बैठी ॥२६॥ कहगी=कंघी। पैली वारा=उसपार ॥२७॥ जरि=जलकर । सारा=डाला ॥२६॥ जीरवै=पचावे अथवा जी रहे, बचा रहे ॥३०॥

११८. रहित=फा० राहत, आनंद ॥२॥ चुवै=चुभे । इंछा= इच्छा ॥३॥ दुरी=छुपी हुई ॥४॥ सजीवनो मुरि=संजीवनी बूटी ॥६॥ इंडा =अण्डा ॥८॥

११६' बारा=बालक ॥१॥ रुहिर=रुधिर, लहू ॥१३॥ नारी= नाड़ियां ॥ ४॥ पाख=पत्त, आधा महीना ॥१५॥ अरधैं= नीचे को । उरध=ऊपर को ॥१६॥ खालासे=छुटकारा ॥१६॥

१२०. कौल=वचन, प्रतिज्ञा । खसम=पति, ईश्वर । वर दोई= दो बार ॥२०॥ घरनि=घर वाली ॥२३॥ सुखमैं=सूक्ष्म वातें ॥२४॥ खीर=दुध ॥२६॥ धाप्यौ=सन्तुष्ट होकर । निमष =पल में ॥०७॥ सेती=से । हेत=प्रेम । जूवा=जुदा । सूवा =तोता ॥०६॥

१२१. तरुनापौ=जवानी । जोई=स्त्री ॥३२॥ अैंग्नौं=आवारह ॥२७॥ दरवि=द्रव्य ॥३४॥ पति=पत, इज्जत । पञ्च लोग= पञ्चों, चौधरियों में । भवङ्गम कीले=कीले हुये सांप ॥३६॥

१२२ जुर=जरा ॥४१॥ कानी देना=किनारा कशी करना ॥४३॥ बारौरी=ड्यौढ़ी ॥४५॥ सतरयो=सत्तर वर्ष का ॥४७॥ बडउवा=बकवाद ॥४१॥ भेव=भेद ॥५०॥ ॥इति॥

सन्त गोकुलचन्द्र जी की कुछ अन्य पुस्तकें—

१ हिन्दी-प्रवेशिका (दो भाग) हिन्दी की सचित्र ! पुस्तकें ! सौ के लग भग चित्र। अपने निराली पुस्तकें हैं।

२. लड़कियों के हिन्दी रीडर (तीन भाग) ऐसे अच्छे रीडर पहले देखे न होंगे। सैकड़ों चित्र, प्रत्येक पाठ और रोचक।

३. पुष्पवाटिका (तीन भाग) ये लड़कों के रीडर भी लड़ के रीडरों की तरह मनोहर, चित्रालंकृत और रोचक हैं

४. सरलपत्र-शिक्षक—इस में विद्यार्थियों के लिये हर प्रकार के (निजी, व्यावहारिक और सरकारी) पत्र तथा अभिनन्दन पत्रों की विधि और नमूने दिये हैं। ।=,॥

५. सचित्र बालरामायण—सौ के लगभग चित्रों से सुसज्जित, बालकों के लिये सरल भाषा में लिखित। १-)

६. संस्कृत अनुवाद प्रणाली—हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद सीखने के लिये अद्वितीय पुस्तक, मैट्रिक तथा प्राज्ञ आदि के लिये विशेष उपयुक्त पुस्तक है। १)

प्रकाशक :—

देवी दास जानकी दास

बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर वा मोहन लाल रोड, लाहौर